

तिब्बत में बौद्धधर्म

लेखक

त्रिपिटकाचार्य राहुल सांकृत्यायन

आवश्यक-सूचना

नेपाल के शिलालेखों और च्वान्-चाइ के वर्णन में 'मात्स्य' शब्द

१० में वर्तमान था। यही

इस लिए होपकरश्रीज्ञान

ले के सना में पृष्ठ १-२१,

बंगलूर में १९११ में ६० बप जोड़ कर पढ़ना चाहिये।

उत्तर गर्भस्थ -

पृष्ठ १४ में ७४२ ३० के स्थान पर ८४२ - ३० पढ़ना चाहिये।

पृष्ठ ३१ में १२२८ ३० के स्थान पर १२०८ ३० पढ़ना चाहिये।

पृष्ठ २८ में—प्रतिष्ठ 'मंजुश्रीमूलकल्प' का दुर्गे-बडि—बुलो-शोसन

पीडित कुमारकलश के साथ मिलकर उलथा किया।

प्रकाशक

श्री शिवप्रसाद गुप्त, सेवा उपवन, काशी

तिब्बत में बौद्धधर्म

लेखक

त्रिपिटकाचार्य राहुल सांकृत्यायन

प्रकाशक

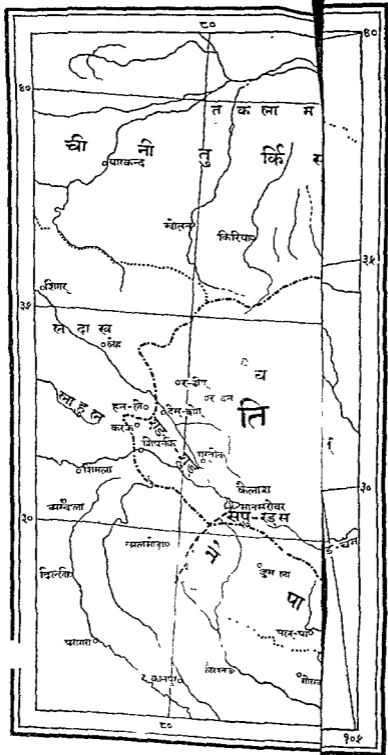
श्री शिवप्रसाद गुप्त, सेवा उपवन, कारी

प्रथम संस्करण }
१००

१९९१

{ मूल्य
१।।

Handwritten mark or signature in the bottom left corner.



तिब्बत में बौद्धधर्म

ईसा से पूर्व तीसरी शताब्दी से ही बौद्धधर्म भारत की सीमा से बाहर फैलने लगा था। उस वक्त उस के धर्म-दूत न केवल पर्सा और लंका में बल्कि मेसोपोटामिया, मेसीदोनिया और मिश्र तक पहुँच गए थे। इसी समय मध्य-एशिया में बौद्धधर्म ही नहीं फैला, बल्कि परंपरा के अनुसार सम्राट् अशोक का एक पुत्र कूचा आस-पास के और प्रदेशों में अपना राज्य भी कायम करने में सफल हुआ। जनश्रुति तो चीन में बौद्धधर्म का पहुँचना पहले बतलाती है किंतु ५६ ई० में खोतन के कारयप-भातंग द्वारा किए गए बौद्ध ग्रंथों के चीनी अनुवाद तो अब भी प्राप्य हैं। ३७२ ई० में बौद्धधर्म कोरिया में, और ५३८ ई० में जापान में स्थापित हुआ। हिंदू-चीन में भी वह ईसा की तीसरी शताब्दी से पूर्व पहुँच चुका था। इस प्रकार जब कि बौद्धधर्म भारत से दूर दूर देशों में इतना पहले पहुँच चुका था, तो पड़ोसी भोट (तिब्बत) देश में ५८० ई० से पूर्व वह क्यों न पहुँच सका ?

वस्तुतः इस का कारण भोट देश की भौगोलिक स्थिति और बहुत कुछ उसी के कारण सामाजिक विकास की गति का मंद होना है। साधारणतः भोट देश में यस्तिर्या समुद्र तल से दस हजार से १२ हजार फीट ऊपर बस

हुई हैं। यदि वह कहीं इन से नीची हैं, तो अन्यत्र १४ हजार फीट पर भी आप उन्हें देखेंगे। इतनी ऊँचाई पर हानि के कारण एक तो वहाँ सर्दी बहुत पड़ती है और दूसरे वहाँ के पहाड़ पृष्ठ-भूतस्पर्श-शून्य हैं। इस प्रकार वहाँ जीवन-संघर्ष आरंभ से हो मनुष्य के लिए कुछ फटिन रहा है। लेकिन भोट देश-वासियों ने बहुत पहले ही इस को अधिक भीषण न होने देने के लिए जनसंख्या-निरोध की औपधि हँद निकाली, और सभी भाइयों को एक ही पत्नी का नियम बना डाला। अब उतने ही स्वेत और उतने ही भेड़-शकरियों के गले उन की आने वाली संतति के लिए भी काफी होने लगे। यह अपनी वर्तमान अवस्था से संतुष्ट रहने लगे। उस समय उन को प्रधान जीविका पशु-पालन थी। यदि परंपरा स्वीकार की जाय, तो कृषि का आरंभ (ब्य-रि) सप्त-लक्ष-शुद्ध-म्यल् (प्रायः ईमयी मन के आरंभ) के समय में हुआ। वस्तुतः यदि बाहर की दुनिया ने दुर्गम हिमालय की पाटियों को पार कर भोट-वासियों को बाह्य दुनिया का परिचय न कराया होता, तो कौन जानता है कि तिब्बत में अभी तक फाँट परिवर्तन हुआ होता ?

तिब्बत में बौद्धधर्म के प्रवेश के बारे में कुछ कहने से पूर्व यहाँ तिब्बत देश के बारे में कुछ कह देना आवश्यक है। तिब्बत देश पूर्व में पश्चिम तक प्रायः उतना ही लंबा है, जितना कि भारत। उत्तर-दक्षिण इस की चौड़ाई छः-सात सौ मील है। इस के चार भाग हैं—

(१) पश्चिमी तिब्बत—जिस में लद्दाख, शङ्-शुद् या गूगे (मान-

^१ हाक्टर पृ० पृ० प्रोफे, 'पेंडिडिटीज़ अन् इंडियन रिबेट', भाग २, पृ० ७१।

^२ भोट-भाषा के शब्दों के उच्चारण में इन नियमों का ध्यान रखने पर वह अन्य भोट के उच्चारण के अनुसार हो जायगा।—

(१) जिनके अक्षर-समूह में केवल एक स्वर उच्चारित होता है, उसे एक विभाजक रेखा से अलग किया गया है, जैसे—पू-शिस् (= ट-शि)।

(२) स्वर-युक्तार्ण के पीछे के स्वरहीन द्, ल्, र् उच्चारित नहीं होते; सिर्फ उन के पूर्व वाले अ, उ, ओ स्वर, विहृत हो अं, उं और ओं (जर्मन u, ö और ö) बन जाते हैं।

सरोवर और लदाख के बीच का प्रदेश), और सप्पु-रड्स (मानसरोवर से पूर्व ग्चड तक का प्रदेश) हैं ।

(२) मध्य तिब्बत—अर्थात् ग्चड (नेपाल, सप्पु-रड्स, दबुस, ल्हो-ख और ब्यङ्-थङ् से घिरा प्रदेश, जिस में डफग-रि, ब्क-शिस्-ल्हुन्-पो, वनम् और स्क्वियद्-रोङ् की वस्तियाँ हैं), दबुस् (दबुस्-छु नदी की उपत्यका का प्रदेश, जिस में द्गड-ल्दन्, ल्ह-स, छु-शल् आदि की वस्तियाँ हैं), ल्हो-ख (छु-शल् से नीचे ब्रह्मपुत्र का तटवर्ती प्रदेश, जिस के निचले भाग में कोङ्-पो प्रदेश है), और कोङ्-पो (पूर्व-बाहिनी ब्रह्मपुत्र का अंतिम और उत्पन्नतम भाग, जो कि भोट के राजवंश का ही मूल-स्थान न था, बल्कि वर्तमान दलाई लामा और टशी लामा की भी जन्मभूमि है । यहीं यर्-लुङ् वस्ती है, जहाँ सोङ्-ञ्चन्-सूगम्-पो के पूर्वज रहा करते थे) ।

(३) पूर्वीय तिब्बत—अर्थात्, खम्स् (पूर्व में चीन के युन्-न्न और से-चु-आन् प्रांतों तक फैला प्रदेश, जिस में छ्व-म्दो और च्दे-न्यस् के मराहूर मठ स्थापित हुए), अम्-दो (खम्स् के उत्तर में चीन से मध्य-एशिया के वणिक-पथ के पास तक फैला प्रदेश) जिस में ब्क-शिस्-ख्यिल्, चो-नस्, सङ्कु-डनुम् के प्रसिद्ध मठ स्थापित हुए । महान् सुधारक चोङ्-ख-प भी यहीं की चोङ्-ख वस्ती में उत्पन्न हुआ था; फोकोनोर का महान् सरोवर और मंगोलों

(३) सभी स्वर ह्रस्व लिखे जाते हैं । आमतौर से उन का उच्चारण डेढ़ मात्रा के पराधर होता है; बिन्तु दीर्घ और प्लुत उच्चारण भी होते हैं ।

(४) जिन वर्णों के नीचे हलन्त का चिह्न (◌) लगा है, उनके उच्चारण नहीं करने चाहिए, विशेष कर यदि वह स्वरयुक्त वर्ण के पूर्व हों ।

(५) संयुक्त वर्णों का उच्चारण होना चाहिए, हाँ यह ध्यान रखना चाहिए, कि—

क, ग, प्र=ट; ख, ऋ=ड; घ, ङ, म=ड

(६) भोट वर्णमाला के कुछ अक्षरों के मने इस प्रकार संकेत रखने हैं—

घ (T) घ (T+) ङ (D-) घ (Z) म (Z) ड (T) घ (T+)

की यु-गुरु जाति यहीं बसती है) और गड् (खम्स से दक्षिण में) ।

(४) व्यङ्-यङ्— (चङ्-यङ्), यह वह अतिशीतल मैदान है, जो मध्य और पश्चिमीय तिब्बत से चीनी तुकिंस्तान तक फैला हुआ है ।

१-आरंभ-युग (५८०-७६३ ई०)

स्रोङ्-ग्युन्-गसुम्-पो के जन्म (५५७ ई०) से पूर्व भोट देश छोटी-छोटी सदाँरियों में बँटा था । स्रोङ्-ग्युन् का जन्म मध्य तिब्बत के उष्णतम प्रदेश कोङ्-पो में हुआ था । कृपि के साथ सभ्यता का भी आरंभ इसी प्रदेश में होना स्वाभाविक था । परंपरा तो बतलाती है, कि स्रोङ्-ग्युन् का प्रथम पूर्वज कोसलराज प्रसेनजित् (ई० पू० पाँचवीं-छठी शताब्दी) का पुत्र था । जो भी हो, इस में तो शक नहीं कि स्रोङ्-ग्युन् का वंश और उस का प्रदेश अधिक उन्नतावस्था में था । यह प्रदेश औरों की अपेक्षा अधिक घना भी बसा था । बाहर के राजाओं और सम्राटों की शान-व-शौकत की कथायें यहाँ पहुँच चुकी थीं । चाप के मरने के बाद तेरह वर्ष की अवस्था में ही स्रोङ्-ग्युन् अपने छोटे राज्य का स्वामी बना । किंतु वह उतने पर सतुष्ट रहने वाला कब था ? अपने समकालीन सम्राट् हर्षवर्धन की भाँति उसे भी दिग्विजय की सूभी । निडर और कष्ट सहन में पटु अपने भोट योद्धाओं को सगठित कर उस ने एक मुट्ठ सेना बनाई, और द्युम् (मध्य) और ग्युङ् के प्रदेशों को अपने अधिकार में कर, उत्तरोत्तर बढ़ते हुए अपने सैन्यबल द्वारा उस ने पश्चिम में गिल्गित, उत्तर में चीनी तुकिंस्तान तक को ही नहीं जीत लिया, बल्कि नेपाल के राजा तथा चीन के सम्राट् को भी कुछ प्रदेशों के साथ अपनी कन्यायें देने पर बाध्य किया । इस प्रकार विजयो भोट देश का सभ्य दुनिया में प्रवेश हुआ । स्रोङ्-ग्युन् सारे भोट और पार्श्ववर्ती प्रदेशों का सम्राट् बना ।

इस विशाल साम्राज्य के संचालन के लिए उसे कई बातें करनी पड़ीं, जिस में पहिली बात थी राजधानी को ब्रह्मपुत्र उपत्यका से हटा कर उस के लिए द्युम्-द्यु नदी के तट पर ल्हासा (ल्हासा) नगर का निर्माण करना ।

इस के पूर्व जो र(र्व)-स (अज्ञ-भूमि) था, वह अब ल्ह-स (देवभूमि) हो गया। ५८० ई० में नेपालाधिपति अंशुवर्मा की कन्या त्रि-चुन् सम्राट् के विवाहार्थ ल्हासा पहुँची। दूसरे वर्ष चोन-राजकन्या कोङ्-जो भी राजा-मात्य म्गर् के साथ ल्हासा आई। इस से पूर्व ही सम्राट् ने यह अनुभव किया था, कि इतने बड़े राज्य का संचालन एक लिपि के बिना सुकर नहीं। इसी लिए वह थोन्-मि (थोन्-गाँव-निवासी) अनु के पुत्र को सोलह साथियों^१ के साथ भारत में विद्याध्ययन के लिए भेज चुका था। नेपाल-राज-कन्या थोन्-मि के साथ ही ल्हासा पहुँची।

नेपाल-राजकुमारी अपने साथ अक्षोभ्य, मैत्रेय और चंदन की तारा की मूर्तियाँ ले आई। उधर चोन-राजकन्या ने एक पुरातन बुद्ध-प्रतिमा—जो किसी समय भारत से मध्य-एशिया और वहाँ से चोन पहुँची थी—दहेज में पाई। चोन-कुमारी रानी कोङ्-जो हुई। उस ने अपनी प्रतिमा को प्रतिष्ठित करने के लिए ल्हासा नगर के उत्तरी भाग में र-भो-छे का मंदिर बनवाया। नेपाल-कुमारी रानी त्रि-चुन के पास इतना धन न था, कि वह अपनी मूर्तियों के लिए मंदिर बनवाती। सम्राट् खोङ्-चुन् को जब यह मालूम हुआ, तो उस ने एक जलाशय पटवा कर, ल्हासा नगर के मध्य में ऽयुल्-स्नङ् का सुंदर मंदिर बनवाया, जिसे आज कल जो-ग्यङ् कहते हैं।

थोन्-मि ने राजा के आदेशानुसार भोट-भाषा लिखने के लिए एक लिपि बनाई जो कश्मीर की उस समय की लिपि के समान थी। भोट-भाषा में उतने स्वरों की आवश्यकता न थी, इसलिए उस ने अ को छोड़ इ-उ-ए-ओ यह चार स्वर बनाए। अ को लेकर व्यंजनों की संख्या तीस की। वर्गों के चतुर्थ अक्षर (घ, ङ इत्यादि) और मूर्धन्य ष अनावश्यक होने के कारण छोड़ दिए गए। साथ ही विशेष उच्चारण के लिए च, छ, ज, श, स, ऽ—इन छः नए अक्षरों का निर्माण करना पड़ा। थोन्-मि ने स्वयं भोट-भाषा का प्रथम व्याकरण बनाया। खोङ्-चुन् ने लिपि और व्याकरण आदि के सीखने के लिए अपना चार वर्ष का

^१ ओवरमिलर, 'बु-मूतोन्', भाग २, पृ० १४३।

समय दिया। ल्हासा के लोद्-पर्वत (ल्चग्स-रि) में उत्कीर्ण यह गुफा आज भी दिग्गलाई जाती है, जिस में रह कर स्त्रोद्-च्युन् चार वर्ष तक इस नई लिपि और व्याकरण का अभ्यास करता रहा।

कहते हैं, मिट्टी के वर्तन, पत्तियों और फरफे का प्रचार भी इसी सम्राट् के समय में हुआ। जो भी हो, डम में तो शक नहीं, कि सम्राट् स्त्रोद्-च्युन् तिब्बत का एक सुरासक ही न था, बल्कि यह भोट देश के आनेवाले साहित्य, धर्म, राजनीति आदि सभी का निर्माता था। अपनी दोनों बौद्ध गनियों और अमात्य थोन्-मि के प्रभाव से यह बौद्ध हुआ। बौद्धधर्म ने अब एक अशिक्षित जाति को सुसंस्कृत बनाने का अवसर पाया। कला-शैशाल, आचार-व्यवहार, शिक्षण-अध्ययन सभी के लिए चीनी और भारतीय बौद्ध विद्वानों को खुला अवसर मिला। उन्होंने ने बड़ी उदारता से काम लिया। यह कोशिश न की, कि इस अशिक्षित जाति के (जिस का न कोई पुराना साहित्य था, न जिस की कोई उन्नत संस्कृति थी) व्यक्तित्व को मिटा कर उसे भारतीय या चीनी बनाने की कोशिश करते। उन्होंने ने बहुत सी बातें भोट जाति को दी, किंतु सब का भोटी-करण कर के। बौद्ध-धर्मग्रंथों के अनुवाद करने के लिए भारतीय पंडित कुसर (या कुमार), नेपाली शीलमंजु, कर्मीरी तुन, चीनी भिजु महादेव, तथा थोन्-मि और उस के शिष्य धर्मकोश गवं, ल्ह-लुङ्-धोस्-जे-दुपल् नियुक्त हुए। थोन्-मि की आठ पुस्तकों में से अब कुछ ही बाकी हैं। शेष पुराने अनुवाद नहीं मिलते। कारण, यह है कि आरंभ के अनुवाद उतने अच्छे नहीं थे, इस लिए पीछे के सुंदर अनुवादों के सामने उन का प्रचार नहीं हो सका। कहा जाता है, थोन्-मि ने 'करडब्यूह-सूत्र', 'रत्नमेव-सूत्र' और 'कर्मशतक' के अनुवाद किए थे। चीनी आचार्यों ने विशेषतः गणित और वैद्यक की पुस्तकों के अनुवाद किए। इस काम में भारत, ली (चीनी तुर्किस्तान) और चीन तीनों देशों के बौद्ध विद्वानों ने सहयोग दिया था। ली देश के दो भिजुओं ने सम्राट् की जीवनी भी लिखी थी।

वासठ वर्ष के सुदीर्घ और प्रशांत शासन के बाद ६३८ ई० में ८२ वर्ष की अवस्था में सम्राट् स्त्रोद्-च्युन् ने ल्हासा के उत्तरवाले फन्-युल प्रदेश के

सल-भी स्थान में अपना शरीर छोड़ा। उस की मृत्यु के बाद सम्राज्ञी कोङ्-जो की आज्ञा से चीन से आई युद्ध-मूर्ति भी ऽयुल्-स्नड् में ला कर स्थापित की गई, और आज तक वही है।

सम्राट् मड्-स्रोड्-मड्-व्चन् (६३८-६५२ ई०)—सम्राट् स्रोड्-व्चन् को, नेपाली रानी खिन्चुन् से एक कुमार गुड्-स्रोड्-गड्-व्चन् पैदा हुआ था, किंतु वह पिता के जीवन ही में जाता रहा। पिता के मरने पर चीनी रानी का पुत्र मड्-स्रोड्-मड्-व्चन् पंद्रह वर्ष की अवस्था में सिंहासन पर बैठा। पिता के महान् व्यक्तित्व ने इसके काम को यद्यपि ढाँक लिया, तो भी एक बार इसे अपना पराक्रम दिखाने का अवसर मिला। स्रोड्-व्चन् की मृत्यु के बाद, (यद्यपि नया सम्राट् चीन-राजकन्या का पुत्र था, तो भी) चीनियों ने भोट की शक्ति को निर्बल समझ उन से युद्ध छेड़ा, किंतु चीनियों को हारना पड़ा। धार्मिक बातों में इस सम्राट् ने तथा इस के पुत्र दुर्-स्रोड् (६५२-७० ई०) ने अपने पूर्वज का अनुसरण किया। दुर्-स्रोड् ने चीन-सम्राट् की कन्या तुन्-शिङ्-कोङ् से व्याह किया था।

खि-ल्दे-गुचुगु-वर्तन् (६७०-७४२)—अपने पिता दुर्-स्रोड् के बाद राजगद्दी पर बैठा। इस बार भी चीन ने अपने खोए हुए प्रदेशों को छीनना चाहा। गिलिगत के लिए एक खासी लड़ाई छिड़ गई। अब की बार भी चीन को हारना पड़ा। चीन-सम्राट् ने अपनी कन्या चिन्-चेङ् (या गियम-क्य) को भोट-युवराज ऽजदु-ख्-ल्ह-दुपोन् के लिए प्रदान किया। जिस वक्त राजकुमार अपनी भावी पत्नी से मिलने जा रहा था, उसी समय किसी आकस्मिक घटना-वश उसका शरीर अंत हो गया। अंत में राजकुमारी का सम्राट् गुचुगु-वर्तन् के साथ व्याह हुआ। इस व्याह के दहेज में भोटराज को हाङ्-हो नदी तटवर्ती चिन्-चु और कु-ए-इ प्रदेश मिले। (घलन्-क) मूलकोप और (डगु) ज्ञानकुमार ने इस समय कुछ चौद्वप्रंथों के अनुवाद किए, जिन में 'सुवर्ण-प्रभासोत्तम सूत्र' मुख्य था।

२—शांतिरक्षित-युग (७६३-६८२ ई०)

खि-स्रोड्-ल्दे-व्चन् (७४२-८५ ई०)—सम्राट् खि-ल्दे-गुचुगु-

१७०० ई०) में ब्रह्मचर्य के प्रवेश में पूर्व भी भोट मत्तक प्रथा का धर्म प्रचलित था, जो अधिकतर ब्रह्म-धर्म की पूजा पर निर्भर था, किंतु कि धर्म-धर्म बढ़ने हैं। यद्यपि बौद्धधर्म ने बहुत उदारता दिखाया (जहाँ तक कि उन के कितने ही पूजा-प्रकारों से संबंध था) ता भी धर्मों धर्मों में प्रयागता के लिए संघर्ष जारी रहा। क्रिस्तोड् संवत् १७०० ई० में भारत-भारत में बौद्ध-धर्मियों मंत्रियों का इतना प्राबल्य हो गया, कि उन्होंने शुद्ध-भूत-संघ से पहले तो बुद्ध-मूर्ति को हटा कर चीन भेजना आरंभ किया, किंतु पीछे उन्हें समझ के भीतर माह दिया, और मंदिर को फसाई-धर्म के रूप में परिगणन कर दिया। उन्हीं समय ही एक मंत्रियों पर कुछ आर्थिक आपातपथी पड़ी, जिस से डर कर उन्होंने मूर्ति नेपाल को सीमा के सीमा धर्म मन्त्रालय प्रवेश के मंत्रियदू-गाह स्थान में भेज दी।

उन्हीं मन्त्रालय की पक्षों समय अपने धर्मों के धर्मों को पढ़ने का भी आग्रह किया। जब समय धर्म अपने धर्मों की बौद्धधर्म पर अपार श्रद्धा का पता लगा। जब ही दिग्पाल हुए धर्मों की रोज कर कर उन्हें चुपचाप पढ़ना शुरू किया, और धर्म में जब भी धर्मों धर्मों ही बौद्धधर्म पर आस्था हो गई। जब ही धर्मों विद्वानों में और भी तथा, फरसीरी पंडित अनंत को धर्म-धर्मों के अनुपात के धर्म में लाया। किंतु धर्म-धर्मों मंत्रियों के विरोध के

कारण उन्हें मङ्ग-युल् भेज देना पड़ा। पंडित अनंत और चीनी विद्वान् घो मङ्ग-युल् ही में ठहरे, जहाँ का तत्कालीन प्रांताधिपति बौद्ध था; किंतु ग्सल्-सुनङ्—जो कि आगे चल कर ये-शेस्-द्वङ्-पो (ज्ञानेंद्र) के नाम से प्रसिद्ध हुआ—वहाँ से भारत चला गया। महाबोधि (बोधगया) के दर्शन के बाद वह नालंदा पहुँचा। वहाँ उस ने आचार्य शांतरक्षित के बारे में सुना। किंतु आचार्य उस समय वहाँ न थे। नेपाल पहुँचने पर सौभाग्य से उसे आचार्य का दर्शन हुआ। ज्ञानेंद्र के आग्रह पर आचार्य मङ्ग-युल् पधारे। कुछ दिनों वहाँ रह कर वह फिर नेपाल लौट गए। हाँ, यह याद रखना चाहिए, कि उस समय मध्यभारत (युक्त-प्रांत, विहार) से तिब्बत जाने का प्रधान रास्ता नेपाल और स्क्वियद्-रोङ् (मङ्ग-युल्) हो कर ही था। ज्ञानेंद्र को आचार्य शांतरक्षित के सत्संग से बहुत लाभ हुआ।

इस सम्राट् के समय में भी चीन ने भोट की तलवार से परीक्षा ली। भोट सेना विजयी हुई। इस विजय की कथा उसी समय एक पापाण-स्तंभ पर लिखी गई, जो अब भी ल्हासा में पोतला के नीचे मौजूद है।

अब ज्ञानेंद्र मङ्ग-युल् से ल्हासा गया। सम्राट् से धर्म-चर्चा हुई। सम्राट् और कितने ही अमात्य बौद्धधर्म को फिर उस के पूर्व-स्थान पर प्रतिष्ठित करना चाहते थे, किंतु बलशाली मंत्रो मा-शङ् खोम्-प-स्क्येद् के सामने किसी को हिम्मत नहीं पड़ती थी। अंत में सम्राट् और अन्य अमात्यों की राय से मा-शङ् जीवित ही दफन कर दिया गया, और इस प्रकार बौद्धधर्म की शक्ति हमेशा के लिए क्षीण हो गई। अब सम्राट् की आज्ञा से ज्ञानेंद्र आचार्य शांतरक्षित को बुलाने गया। आचार्य के लिए सब से बड़ी दिक्कत भापा की थी; किंतु कश्मीरी पंडित अनंत बहुत वर्षों तक तिब्बत में रहने के कारण भोट-भापा का अछुदा ज्ञान रखते थे। आचार्य संस्कृत में बोलते थे; और वह उस का उल्था कर दिया करते थे। कहने को आवश्यकता नहीं कि भोट-सम्राट् ने नालंदा के इस अद्भुत विद्वान् का खूब सन्मान किया। ल्हासा पहुँच कर चार मास तक आचार्य राजमहल में दश कुशल (शुभकर्म), अठारह धातु और द्वादशांग प्रतीत्यसमुत्पाद पर व्याख्यान देते रहे। सम्राट् उन का

बड़ा ही अनुरक्त शिष्य हो गया। इसी समय नदो की याद में फद्-यद् स्थान बह गया, लोहितगिरि (मर-पो-रि) पर विजली गिरे, और देश में नदों की भीमारी फैल गई। लोगों ने शोर किया, कि यह आचार्य के उपदेश में कष्ट हुए तिब्बत के देयताओं के प्रकोप का फल है। लाचार इच्छा न रहते हुए भी सम्राट् आचार्य का कुछ दिनों के लिए वापस भेजने पर मजबूर हुए।

कितने ही समय के बाद सम्राट् ने ज्ञानेंद्र को धर्म-धर्मों के समूह के लिए चीन, और सङ्-शि (चीन)-भिन्नु की नीम मायिया के साथ आचार्य शांतरक्षित को चुलाने के लिए भारत भेजा। ज्ञानेंद्र के चीन में लौटने पर भी जब आचार्य नहीं आए, तो सम्राट् ने ज्ञानेंद्र को भी रखाना किया। आचार्य शांतरक्षित ७५ वर्ष की बुढ़ापे की अवस्था में भी धर्म-प्रचार के उत्तम अवसर को हाथ से कब छोड़ने वाले थे। वह फिर तिब्बत पहुँचे। मद्रापुर की उपत्यका के वसम्-यस् (सम्-ये) में उन का निवास कराया गया।

यद्यपि बौद्धधर्म का तिब्बत में प्रवेश प्रायः दो सौ वर्ष पूर्व हुआ था किन्तु अब तक न कोई भोट-देशीय भिन्नु बना था, और न वहाँ कोई मठ ही स्थापित हुआ था। राजा की इच्छानुसार आचार्य ने मद्रापुर में प्रायः दो मील उत्तर एक भूमि मठ के निर्माण के लिए चुनी। यहीं मगधेश्वर महाराज धर्म-पाल (७६९-८०९ ई०) के बनवाये उद्भयंतपुरी (विहार-शरीफ) मठविहार के नमूने (?) पर वसम्-यस् विहार की नींव डाली गई। विहार का आरंभ ७६३ ई० में हुआ, और समाप्ति ७७५ ई० में। मठ के मध्य में सुमेरु की भाँति प्रधान विहार (मंदिर) बनाया गया, और चारों तरफ चार महादीप और आठ उप-दीपों की भाँति भिन्नुओं के रहने के लिए धारह गुलिङ् (द्वीप) बनाए गए। इन में दस निम्न हैं—(१) रम्-गुम्-गुम्-रङ्-गुलिङ्, (२) वृद्-गुम्-गुम्-गुम्-गुलिङ्, (३) नैम्-दग्-मि-रुम्-रङ्-गुलिङ्, (४) द्रुगे-ग्युम्-ग्ये-म-गुलिङ्, (५) उद्गुल्-गुम्-रङ्-गुलिङ्; (६) मि-ग्यो-वसम्-गतम्-गुलिङ्; (७) वृदे-

१ जलशय (७६३ ई०) की जगह पर अग्नि-शय गलती में लिखा मालूम होता है।

सन्ध्योर्द्वयडूस्-पडि-ग्लिड्, (८) दूकोर्-मज्जोद्-पे-हर्-ग्लिड्; (९) जम-ग्लिड्; (१०) ग्य-गर्-ग्लिड्। दो के नामों का पता नहीं। प्रधान विहार के चारों कोनों पर, कुछ हटकर, पक्षी इंटों के लाल नीले आदि रंगों वाले चार सुंदर स्तूप बनवाए गए। चक्रवाल की भाँति एक ऊँचे प्राकार से सारा मठ घेर दिया गया और चारों दिशाओं में प्रवेश के लिए चार फाटक लगाए गए। इस विहार के बनाने में बारह वर्ष लगे। जिस समय विहार तैयार हुआ होगा, उस समय यह अद्भुत चीज रही होगी, लेकिन दुर्भाग्यवश, बारहवीं शताब्दी के आरंभ में किसी असावधानी के कारण उस में आग लग गई, जिस से अधिकांश मकान जल गए। फिर र (र्व)-लो-च-वर्-दा-र्ज-प्रग्स ने उसी शताब्दी में इस का पुनर्निर्माण कराया। यह मठ तिब्बत के अन्य पुराने मठों—श-त्तु (स्थापित १०४० ई०), सन्द्-थड् (स्थापित ११५३ ई०) आदि—की भाँति पहाड़ की भुजा पर स्थित न हो कर मध्य-भारत के पुराने मठों की भाँति, समतल भूमि पर बना है।

विहार-निर्माण आरंभ करने के समय ही राजा की इच्छा हुई, कि भोट-देशीय पुरुष भिजु-दोत्ता से दीक्षित किए जावें। विहार का कुछ काम हो जाने पर आचार्य ने नालदा से सर्वास्तिवादी भिजुओं को बुलवाया। भिजु-नियम के अनुसार भिजु बनाना संघ का काम है, कोई एक व्यक्ति भिजु नहीं बना सकता। यद्यपि मध्य-भारत (युक्त-प्रांत, विहार) से बाहर पाँच भिजु भी होने से कोरम पूरा हो जाता है, तो भी आचार्य ने बारह भिजु बुलाए; और मेघ-वर्ष (७६७ ई०) में—(१) ज्ञानेंद्र, (२) दूपल्-द्वयडूस्, (३) (ग्चड्) शालेंद्र-रक्षित, (४) (र्म) रिन्-छेन्-मधोग्, (५) (ऽखोन्) क्लुडि-द्वयडू-पो, (६) (ग्चड्) देवेंद्ररक्षित, (७) (प-गोर्) वैरोचनरक्षित—यह सात भोट देशीय कुल-पुत्र भिजु बनाए गए।

भिजु-संघ और भिजु-विहार स्थापित कर आचार्य शांतरक्षित ने भोट देश में बौद्धधर्म की नींव दृढ़ कर दी। यहाँ एक और व्यक्ति के विषय में कुछ लिख देना आवश्यक है। तिब्बत के पुरातन भिजुओं द्वारा स्थापित परंपरावाले आज कल जिङ्-म-प कहे जाते हैं। यद्यपि यह लोग आचार्य शांतरक्षित की भी अपना नेता मानते हैं, तो भी अधिक श्रेय एक रहस्यपूर्ण व्यक्ति पद्मसंभव

को देने हैं। इस का कारण, उन का वास्तविकता की अपेक्षा जादू तथा मंत्र में असाधारण अनुराग है। अधिक से अधिक यही कहा जा सकता है, कि पद्मसंभव शांतरक्षित के अनुगामी भिक्षुओं में एक साधारण भिक्षु था। स्तूप-उत्थुर में इस की भिक्षु-नियम-संबंधी कुछ छोटी पुस्तकें भी मिलती हैं। पद्मसंभव राजा इंद्रभूति (इंद्रबोधि) का पुत्र कहा जाता है, किंतु भारतीय परंपरा, इंद्रभूति को चौरासी सिद्धों में मानती हुई भी, उस के पुत्र पद्मसंभव के बारे में कुछ नहीं जानती। इंद्रभूति आदि-सिद्ध समूह (७५० ई०) के बाद हुआ था, फिर उस के पुत्र का वृद्ध-युग्म बनने के समय तिब्बत पहुँचना भी संभव नहीं। सब बातों पर विचार करने से ज्ञात होता है, कि एक साधारण भिक्षु पद्मसंभव को आसमान पर चढ़ाने के लिए, पीछे के सिद्ध-म-संप्रदाय वालों ने तरह तरह की अद्भुत कहानियाँ गढ़ीं; और इस के लिए मूल-संस्थापक आचार्य शांतरक्षित तो पीछे डाल दिए गए, और पद्मसंभव की तिब्बत में बुद्ध से भी अधिक पूजा होने लगी।

अन्य कार्यों से निवृत्त हो आचार्य ने बौद्धग्रंथों के अनुवाद की ओर ध्यान दिया। अभी तक अनुवादों का कोई पक्का निर्धारित नियम नहीं बना था। इसी लिए मालूम होता है, इस समय के बहुत से अनुवाद पीछे अमार्थ हो गए। आचार्य शांतरक्षित के अनुवाद किए ग्रंथों में दिङ्नाग-विरचित 'हेतुचक्र' भी है जिसे उन्होंने ने लोच-व धर्मकोष को सहायता से अनुवादित किया था।

सौ वर्ष की आयु में (प्रायः ७८० ई० के करीब) पीछे के पैर की चोट से आचार्य का देहांत हो गया। विहार के पूर्व की छाँटी पहाड़ी पर उन का शरीर एक स्तूप में रक्खा गया। साढ़े ग्यारह सौ वर्ष तक, मानते वह उसी पहाड़ी टेकरी पर से अपने कार्य की देव रेख कर रहे थे। ३०-३५ वर्ष हुए वह जीर्ण-शीर्ण स्तूप गिर पड़ा, और आचार्य का अस्थिमय शरीर नीचे गिर गया। वहाँ से जमा कर आचार्य शांतरक्षित का कपाल और कुछ हड्डियाँ इस समय प्रधान मंदिर में शरीर के अंदर रक्खी गई हैं।

आचार्य शांतरक्षित असाधारण दार्शनिक थे, इस का हाल ही में, संस्कृत में प्रकाशित उन के दार्शनिक ग्रंथ 'तत्त्व-संग्रह' से पता लगता है। वह अपने समय के बौद्ध, ब्राह्मण, जैन सभी दर्शनों के प्रगाढ़ विद्वान् थे। ऐसे विद्वान् की देश में भी प्रतिष्ठा कम न थी, किंतु यह वह समय था, जब कि भारत से साहस-मय जीवन नष्ट न हुआ था। देश में प्राप्त सम्मान का ख्याल छोड़ ७५ वर्ष की उम्र में हिमालय की दुर्गम घाटियों को पार करने को वह तैयार हो गए, जब उन्होंने ने देखा, कि इस प्रकार वह अपने धर्म की सेवा कर सकते हैं। इस त्याग के लिए ही उन का नाम बोधिसत्व पड़ा, और आज भी तिब्बत में अधिकांश लोग उन्हें आचार्य शांतरक्षित की जगह म्खन्-डेन् (महापंडित) बोधिसत्व के नाम से ही प्यारा जानते हैं।

आचार्य शांतरक्षित के बाद उन के शिष्य दूपल्-दुय्यड्स (श्रीघोष) संघ-नायक बने। स्त्रोड्-य्चन् के काल से ही भोट में चीनी बौद्ध विद्वानों की प्रधानता थी, यद्यपि कभी कभी कुछ भारतीय विद्वान भिक्षु भी वहाँ पहुँच जाते थे। सम्राट् खिन्-स्त्रोड्-ल्दे-य्चन् की गंभीर ज्ञानपिपासा ने उन्हें बौद्धधर्म के मूल-स्रोत भारतवर्ष को और आकृष्ट किया। आचार्य शांतरक्षित के पहुँचने के बाद तो अब भारतीय भिक्षुओं की प्रधानता हो गई। किंतु, आचार्य के देहांत के बाद महत्वाकांक्षी चीनी भिक्षुओं ने विवाद खड़ा किया, और वह भी एक सिद्धांत की आड़ में। उन्होंने उपदेश देना शुरू किया कि सारे कर्मों को छोड़ कर परम निष्कर्मण्यता का आश्रय लेना ही बुद्ध-पद की प्राप्ति का एक मात्र साधन है। श्रीघोष इस के विरुद्ध, यथार्थ सिद्धांत का प्रतिपादन करते रहे। धीरे धीरे स्तोन्-सुन्-प (अकर्मण्यतावादी या सद्यो-वादी) सम्प्रदाय का जोर बढ़ने लगा, और शांतरक्षित के अनुयायी चेन्-मिन्-प (कर्मण्यतावादी, या क्रमिकवादी) का बल घटने लगा। इस झगड़े से धबड़ा कर ज्ञानेंद्र ब्सम्-यस् छोड़ दक्षिण ल्हो-त्रग् में ध्यान और एकांत-चिंतन के लिए चले गए। जब राजा ने कहा, कि सिद्धांत और आचार दोनों में सब को आचार्य बोधिसत्व के सिद्धांत को मानना चाहिए, तो अकर्मण्यता-वादी दल ने कर्मण्यता-वादियों को मार डालने की धमकी देनी

को देने हैं। इस का कारण, उन का याम्बविकता की अपेक्षा जादू तथा मंत्र में असाधारण अनुराग है। अधिक से अधिक यही कहा जा सकता है, कि पद्मसंभव शांतरक्षित के अनुगामी भिक्षुओं में एक साधारण भिक्षु था। स्तूप-जग्युर में इस की भिक्षु-नियम-संबंधी कुछ छोटी पुस्तकें भी मिलती हैं। पद्मसंभव राजा इंद्रभूति (इंद्रबोधि) का पुत्र कहा जाता है, किंतु भारतीय परंपरा, इंद्रभूति को चौरासी सिद्धों में मानती हुई भी, उस के पुत्र पद्मसंभव के बारे में कुछ नहीं जानती। इंद्रभूति आदि-सिद्ध सरह (७५० ई०) के बाद हुआ था, फिर उस के पुत्र का वसम्-यम् बनने के समय तिव्वत पहुँचना भी संभव नहीं। सब बातों पर विचार करने से ज्ञात होता है, कि एक साधारण भिक्षु पद्मसंभव को आसमान पर चढ़ाने के लिए, पीछे के जिङ्म-प संप्रदाय वालों ने तरह तरह की अद्भुत कहानियाँ गढ़ीं; और इस के लिए मूल-संस्थापक आचार्य शांतरक्षित तो पीछे डाल दिए गए, और पद्मसंभव की तिव्वत में बुद्ध से भी अधिक पूजा होने लगी।

अन्य कार्यों से निवृत्त हो आचार्य ने बौद्धग्रंथों के अनुवाद की ओर ध्यान दिया। अभी तक अनुवादों का कोई पक्का निर्धारित नियम नहीं बना था। इसी लिए मालूम होता है, इस समय के बहुत से अनुवाद पीछे अमाह्य हो गए। आचार्य शांतरक्षित के अनुवाद किए ग्रंथों में दिङ्नाग-विरचित 'हेतुचक्र' भी है जिसे उन्होंने ने लो-च-व धर्मकोष की सहायता से अनुवादित किया था।

सौ वर्ष की आयु में (प्रायः ७८० ई० के करीब) घोड़े के पैर की चोट से आचार्य का देहांत हो गया। बिहार के पूर्व की छोटी पहाड़ी पर उन का शरीर एक स्तूप में रक्खा गया। साढ़े ग्यारह सौ वर्ष तक, मानो वह उसी पहाड़ी टेकरी पर से अपने कार्य की देख रेख कर रहे थे। ३०-३५ वर्ष हुए वह जीर्ण-शीण स्तूप गिर पड़ा, और आचार्य का अस्थिमय शरीर नीचे गिर गया। वहाँ से जमा कर आचार्य शांतरक्षित का कपाल और कुछ हड्डियाँ इस समय प्रधान मंदिर में शोशे के अंदर रक्खी गई हैं।

आचार्य शांतरक्षित असाधारण दार्शनिक थे, इस का हाल ही में, संस्कृत में प्रकाशित उन के दार्शनिक ग्रंथ 'तत्त्व-संग्रह' से पता लगता है। वह अपने समय के बौद्ध, ब्राह्मण, जैन सभी दर्शनों के प्रगाढ़ विद्वान् थे। ऐसे विद्वान् को देश में भी प्रतिष्ठा कम न थी, किंतु यह वह समय था, जब कि भारत से साहस-मय जीवन नष्ट न हुआ था। देश में प्राप्त सम्मान का ख्याल छोड़ ७५ वर्ष की उम्र में हिमालय की दुर्गम घाटियों को पार करने को वह तैयार हो गए, जब उन्होंने ने देखा, कि इस प्रकार वह अपने धर्म की सेवा कर सकते हैं। इस त्याग के लिए ही उन का नाम बोधिसत्व पड़ा, और आज भी तिब्बत में अधिकांश लोग उन्हें आचार्य शांतरक्षित की जगह म्खन्-छेन् (महापरिनिर्वाण) बोधिसत्व के नाम से ही ज्यादा जानते हैं।

आचार्य शांतरक्षित के बाद उन के शिष्य दूपल्-द्व्यङ्ग्स् (श्रीघोष) संघ-नायक बने। स्त्रोङ्-बृचन् के काल से ही भोट में चीनी बौद्ध विद्वानों की प्रधानता थी, यद्यपि कभी कभी कुछ भारतीय विद्वान भिक्षु भी वहाँ पहुँच जाते थे। सम्राट् स्त्रि-स्त्रोङ्-ल्दे-बृचन् की गंभीर ज्ञानपिपासा ने उन्हें बौद्धधर्म के मूल-स्रोत भारतवर्ष को ओर आकृष्ट किया। आचार्य शांतरक्षित के पहुँचने के बाद तो अब भारतीय भिक्षुओं की प्रधानता हो गई। किंतु, आचार्य के देहांत के बाद महत्वाकांक्षी चीनी भिक्षुओं ने विवाद खड़ा किया, और वह भी एक सिद्धांत की आड़ में। उन्होंने ने उपदेश देना शुरू किया कि सारे कर्मों को छोड़ कर परम निष्कर्मण्यता का आश्रय लेना ही बुद्ध-पद की प्राप्ति का एक मात्र साधन है। श्रीघोष इस के विरुद्ध, यथार्थ सिद्धांत का प्रतिपादन करते रहे। धीरे धीरे स्तुतोन्-मुन्-प (अकर्मण्यतावादी या सद्यो-वादी) सम्प्रदाय का जोर बढ़ने लगा, और शांतरक्षित के अनुयायी चेन्-मिन्-प (कर्मण्यतावादी, या क्रमिकवादी) का बल घटने लगा। इस झगड़े से घबड़ा कर ज्ञानेंद्र ब्रह्म-स्यस् छोड़ दक्षिण ल्हो-ब्रग् में ध्यान और एकांत-चित्तन के लिए चले गए। जब राजा ने कहा, कि सिद्धांत और आचार दोनों में सब को आचार्य बोधिसत्व के सिद्धांत को मानना चाहिए, तो अकर्मण्यता-वादी दल ने कर्मण्यता-वादियों को भार डालने की धमकी देनी

हुए थी। अंत में इस भगवद् के मित्राने का उपाय जानने के लिए राजा ने ज्ञानेंद्र के पास आदर्श भेजा। श्री चार ज्ञानेंद्र ने आने में इन्कार कर दिया, किंतु तीसरे चार यह राजा के पास आए। राजा के पदों पर उन्होंने ने पताया कि हमारे आचार्य ने कहा था, कि यदि कोई विचार गढ़ा हो, तो हमारे शिष्य कमलशील को बुलाना। अपने गुरु को भीति आचार्य कमलशील भी नालंदा के एक महाविद्वान् थे। शान्तिरत्न के ५००० श्लोकों के दार्शनिक ग्रंथ 'नन्दमप्रह' पर इन्होंने एक विद्वान्मार्ग पंथिका लिखी है। यह शान्ति ग्रंथ ब्रह्मदेव की गायक्याद-अरिगेंडल-सोर्गिण में छप चुके हैं।

अकर्मण्यता-आदिओं के नेता चीनी भिक्षु ह्साइ-कां जब पता लगा, तो उस ने अपने पक्ष के प्रमाण में 'ध्यान-ध्यान-पत्र' नामक ग्रंथ लिख कर, मदायान मूर्तों से बहुत से प्रमाण जमा कर दाने। इस ने अपने शिष्यों को भी इस बड़े शास्त्रार्थ के लिए तैयार कर लिया। आचार्य कमलशील के पहुँचने पर, शास्त्रार्थ का समय नियत हुआ। सम्राट् ने स्वयं मध्यम का आसन ग्रहण किया। दाहिनी ओर अकर्मण्यतावादी और उन के नेता ह्साइ- (भिक्षु) बैठे, बाईं ओर आचार्य कमलशील, ज्ञानेंद्र, श्रीचोप और दूसरे लोग। सम्राट् ने दोनों पक्षों के मुण्डियों के हाथ में फूल की मालाएँ दे दीं, और कहा, जो हारे वह विजिता को माला दे और यहाँ से हमेशा के लिए चला जावे। ह्साइ ने पहले अपने पक्ष के समर्थन में भाषण दिया, जिस का उत्तर आचार्य कमलशील ने दिया। इस के कहने को आवश्यकता नहीं, कि शास्त्रार्थ में दुभाषिया से काम लिया जाता था। अकर्मण्यतावादियों की अंत में पराजय हुई। वह आचार्य के हाथ में माला दे कर देश से निकल गए।

पीछे ह्साइ ने धन-लोभ दे कर चार चीनी क्रसाइयों को भेजा, जिन्होंने आचार्य कमलशील को मार डाला। ज्ञानेंद्र ने भी शोकाक्रांत हो निराहार से प्राण त्याग दिए, और सम्राट् भी ६९ वर्ष की अवस्था में (७४२ ई०) परलोक-गामी हुए।

^१ ह्साइ यह चीनी राज् है, जिस का अर्थ भिक्षु है। इस ह्साइ का अग्रणी नाम महात्म नहीं।

इस समय आचार्य विमलमित्र, बुद्धगुह्य, शांतिगर्भ, और विशुद्धसिंह ने भोट-देशीय लो-च-व (अनुवादक)^१—धर्मालोक, (वन्दे) नर्म-मखऽ, (सुगो) रिन्-श्रेन-सुदे, नर्म-पर-मि-तोग्-प और शाक्य-प्रभ की सहायता से कितने ही ग्रंथों के अनुवाद किए। तो भी अभी वास्तविक अनुवाद का काल आरंभ न हुआ था।

मु-नि-बृ-च-न्-पो (७८५-८६ ई०)—सम्राट् खि-स्लाब् वीर थे, किंतु उस से भी अधिक वह धार्मिक थे। उन के विचारों का असर उन की संतान पर पड़ा। जब उन के बाद उन का पुत्र मुनि-बृ-च-न्-पो गद्दी पर बैठा, तो वह दूसरा ही स्वप्न देखने लगा। उस का पिता और सारा घर धार्मिक शिक्षा, विशेष कर बोधिसत्व-आदर्श (अर्थात् दूसरों के हित के लिए तन, मन, धन ही नहीं, हाथ में आई अपनी मुक्ति तक का परित्याग करना) से सराबोर था। तरुण सम्राट् ने अपने आस-पास प्रजा में दरिद्रता देखी; जो दरिद्र नहीं थे, उन्हें भी उस ने अपने से अधिक धनी की शान-व-शौकत तथा अपमान भरे वर्ताव से असंतोष की भट्टी में जलते देखा। वह सोचने लगा, किस प्रकार इस दुःख का अंत किया जावे। अंत में उस की समझ में आया कि धन का सम-वितरण ही इस का एक मात्र उपाय है। इस प्रकार ७८५-८६ ई० में उस ने आर्थिक साम्यवाद का प्रयोग करना शुरू किया। किंतु इतने बड़े प्रयोग के लिए देश में क्षेत्र तैयार न था। श्रम के सम-वितरण के बिना कभी भी अर्थ का सम-वितरण सफल नहीं हो सकता। एक बार धन का सम-वितरण हो जाने पर आलसियों से कोई काम लेने वाला न रहा, थोड़े दिनों में खा-पी कर वह फिर फाक्तेमस्त हो गए, और दूसरे मेहनती लोगों के पास फिर संपत्ति जमा होने लगी। सम्राट् ने एक के बाद एक तीन बार तक अर्थ का सम-विभाग किया। तीसरी बार के बाद यह प्रयोग दूर के लोगों को ही नहीं, बल्कि उस

^१ लो-च-व शब्द लोक और चक्षु दो शब्दों के आदि अक्षरों में मिल कर बना है। चाहे वह लोक लोक के चक्षु न भी हों, किंतु इस में तो शक नहीं कि भारतीय आचार्यों के लिए—जो भोट भाषा से अनभिज्ञ थे—वह अवश्य चक्षु थे।

की भाँ को भी असह्य हो गया, और इस प्रकार उन्नीस मास के शासन के बाद ही, माता द्वारा दिए गए विष में, इस महात्मा को मृत्यु हुई। मुनि-वचन-पो को कुछ लोग पागल कहेंगे, किंतु यदि वह पागल था, तो एक पवित्र आदर्श के पीछे। आज-कल जब कि मनन-शील पुरुषों की विचार-धारा संसार को साम्यवाद की ओर ले जा रही है, इस साम्यवाद के शहीद का आदर-पूर्वक स्मरण जरूर होगा।

त्रि-ल्लंद-वचन-पो या सद्-न-लेगूम (७८७-८१७ ई०)—मुनि-वचन-पो के बाद उम का भाई त्रि-ल्लंद-वचन-पो सिंहासन पर बैठा। इस का भी बौद्धधर्म पर स्नेह अपने पिता और भाई से कम नहीं था। सुदूर पश्चिम बलित्स्तान के स्कर्-नों नगर में इस ने बौद्ध-मंदिर बनवाया। अथ तक कितने ही ग्रंथों के अनुवाद भोट भाषा में हो चुके थे, किंतु अभी तक अनुवाद के शब्दों और भाषा में किसी खास नियम का पालन नहीं किया जाता था। जिस को जो प्रतिशब्द अच्छा लगा, वह उसी का प्रयोग करता था। अश्ववर्ष (७९० या ८०२ ई०) में सघाट् ने अनुवाद करने वाले भारतीय पंडित जिनमित्र, सुरेंद्रबोधि, शीलेंद्रबोधि, दानशोल, बोधिमित्र तथा उन के सहायक भोट विद्वान् रत्नरत्नित, धर्मताशील, ज्ञानसेन (ये-शेस्-सदे) जयरत्नित, मंजुश्रीवर्म, रत्नेंद्रशील से कहा कि पहले देवपुत्र (मेरे) पिता के समय आचार्य बोधिसत्व, ज्ञानेंद्र, ज्ञानदेवकोप, ब्राह्मण अनंत आदि ने अनुवाद किए, किंतु उन्होंने ने एक ऐसी भाषा का निर्माण किया, जो देश-वासियों के समझने लायक नहीं है। चोन, ली, सहारे आदि को भाषाओं के अनुवाद से प्रत्यनुवाद किए गए थे, जिन में प्रतिशब्द का कोई नियम नहीं रक्खा गया। इस की वजह से धर्मग्रंथों के समझने में कठिनाई होती है। इस लिए आप लोग अथ सीधे संस्कृत से अनुवाद करें, और प्रतिशब्दों की एक तालिका बना लें। अनुवाद का एक नियम हो, जिस का उल्लंघन न होना चाहिए। पिछले अनुवादों का फिर से संशोधन कर देना चाहिए।

इस प्रकार नवौं शताब्दी के मध्य से संस्कृत ग्रंथों के नियमबद्ध अनु-

वाद भोट भाषा में होने लगे । इन अनुवादों में प्रतिशब्द चुनते समय संस्कृत के धातु-प्रत्ययों का भोट भाषा के धातु-प्रत्ययों से मेल होने का पूरा ख्याल रक्खा गया है, और संस्कृत के हर एक विशेष शब्द के लिए एक एक शब्द नियत कर दिया गया है । उदाहरणार्थ—छोस्-ऽ जिन् (धर्म-धर), छोस्-स्क्वोड् (धर्मपाल) । हाँ, सड्स्-ग्यस् (बुद्ध), व्यड्-ड्युप् (बोधि) आदि कुछ शब्द जो पिछली दो शताब्दियों में बहुप्रचलित हो गए थे, उन्हें उन्होंने ने वैसा ही रहने दिया । प्रतिशब्दों को चुन कर उन्होंने ने पृथक् पुस्तकें बना लीं, जो 'व्युत्पत्ति' के नाम से अब भी स्तन-ऽ ग्युर के भीतर मौजूद हैं^१ । महायान तथा दूसरे सूत्रों का अधिकांश अनुवाद इसी समय का है । इस समय कुछ तंत्र-ग्रंथों के भी अनुवाद हुए थे । इस समय के अनुवादों में नागार्जुन, असंग, वसुबंधु, चंद्रकीर्ति, विनीतदेव, शांतरक्षित, कमलशील आदि के कितने ही गंभीर दर्शन-ग्रंथ भी हैं । जिनमित्र, ये-शेस्-स्दे, धर्मताशील के अतिरिक्त भोट-देशीय आचार्य द्रुपल्-व्चेंगस् इस काल के महान् अनुवादक हैं । जितना अनुवाद-कार्य ७९०-८४० ई० में हुआ, उतना किसी काल में न हो सका ।

रल्-प-चन् (८१७-८४१ ई०)—बड़े भाई (ग्लड्) दर्-भ के रहते भी पिता के मरने के बाद यही राजपद के योग्य समझा गया । यह पिता-पितामह से चले आते बौद्धधर्म के कार्य को चलाता ही नहीं रहा, बल्कि उस के प्रति अपनी भक्ति दिखाने में इस ने अपने पूर्वजों को भी भाव करना चाहा । धर्मो-पदेश सुनते वक्त यह अपने शिर के केशों पर रेशमी चादर विद्या कर उस पर व्याख्याता को बैठाता था । एक एक भिक्षु की सेवा के लिए इस ने सात सात कुटुंब नियुक्त किए थे । राज-कार्य में भी भिक्षुओं को बहुत अधिकार दे रक्खा था । राजधानी ल्हासा का सारा ही प्रबंध एक भिक्षु के हाथ में था । राजा का

^१ तिब्बत में भारतीय ग्रंथों के अनुवाद का काम भारतीय पंडित और भोट-देशीय विद्वान् मिल कर करते थे । भोट-देशीय विद्वान् लो-च-व कहे जाते हैं । इस प्रकार भोट और संस्कृत दोनों भाषाओं का गंभीर ज्ञान एकत्रित हो जाने से भोटिया अनुवाद संसार में अद्वितीय हैं ।

पुत्र चङ्-मो स्वयं भिक्षु हो गया। वस्तुतः यह अंधी भक्ति मर्यादा को पार कर रही थी। इस ने अयोग्य व्यक्तियों को भिक्षु बनने की ओर प्रेरित किया। फिर यह साग दोष राजा और उस के स्नेहास्पद धर्म पर लगने लगा। ग्लड्-दर्-म (जो राजपद से वंचित कर दिया गया था) और बौद्धधर्म-विरोधी अमात्यों को यह अच्छा मौका हाथ लगा; खबर उड़ाई गई कि राजा के आदर-भाजन भिक्षु (वन्-दे) योन्-तन्-दुपल् का महारानी डङ्-छुल्-म के साथ अनुचित संबंध है। अंत में पड़्यत्रियों ने योन्-तन्-दुपल् को मार डाला, जिस पर रानी ने आत्महत्या कर ली। स्वयं सम्राट् भी लोह-पची वर्ष (८५१ ई०) में ग्लड्-दर्-म के कृपापात्र दुपस्-ग्यल्-तोर्-ने और (चोर्-ने) लेगस्-स्म द्राघ भार डाला गया। इस प्रकार १६२ वर्ष (५८०—७४२ ई०) तक सत्कृत और संमानित हो कर, फिर १०० वर्ष (७४२—८४१ ई०) तक असाधारण भक्ति का भाजन रह कर, अथ बौद्धधर्म ने भोट देश में घुरे दिन देखे।

ग्लड्-दर्-म (८४१-२ ई०)—भाई की हत्या करा कर ग्लड्-दर्-म सिंहासन पर बैठा। चीनी इतिहास-लेखक^१ दर्-म के बारे में लिखते हैं—वह शराब का प्रेमी, खेलों का शौकीन, स्त्री-लंपट, क्रूर, अत्याचारी और कृतघ्न था। यह सब होते हुए भी दर्-म को बौद्धधर्म पर अत्याचार करने का मौका न मिला होता यदि बौद्ध-भिक्षुओं ने प्रभुत्व और मान की लिप्सा से प्रेरित हो अपने प्रभाव से अनुचित लाभ उठाना न शुरू किया होता, और रत्न-प-चन बौद्धधर्म के प्रति मर्यादित भक्ति दिखलाते हुए अपने राजा के कर्तव्य का भी ध्यान रखता। ग्लड्-दर्-म ने अपने भाई के हत्यारे दुपस्-ग्यल् को मंत्री का पद प्रदान किया। सभी ऊँचे पदों पर बौद्ध-विरोधियों की नियुक्ति हुई। अनुवादकों के रहने के मकान और पाठशालायें नष्ट कर दी गईं। उस ने आज्ञा दी कि भिक्षु अपने धार्मिक जीवन को छोड़ गृहस्थ बन जावे। जां भिक्षु-वेष को छोड़ने के लिए तैयार न थे, उन्हें घनुप-वाण दे कर शिकारी बनने के लिए मजबूर किया गया। आज्ञा उल्लंघन करने वाले कितने ही भिक्षु तलवार के घाट उतारे गए।

^१ 'यह-हु', 'एटिबिटोड्ड अन् इंडियन टिबेट', भाग २, पृ० ९२ से उद्धृत।

जो-खड् के मंदिर से हटा कर बुद्ध-मूर्ति बालू के नोचे दबा दी गई। मंदिर का द्वार बंद कर के उस पर शराब पीते हुए भिक्षुओं की तसवीरें अंकित कर दी गईं। ल्हासा के र-मो-छे मंदिर और बसम-यस् विहार के द्वार भी इसी प्रकार बंद कर दिए गए। उस वक्त अधिकांश पुस्तकें ल्हासा की चट्टानों में छिपा दी गई थीं। (अड्) तिङ्-डे-ऽजिन्-वूस्-ड्-पो और (र्म) रिन्-छेन्-मूद्योग् मार डाले गए। बाकी पंडित और लो-च-य देश छोड़ कर भाग गए। अत्याचार के मारे बौद्ध भिक्षुओं का रहना असंभव हो गया। उस समय (गूच-ड्)-रव्-गुसल्, (फो-ओ-ड्-प, ग्यो) द्गो-ऽच्युड्, और (सतो-द- लुड्-प-स्मर्) शाक्यमुनि तीन भिक्षु दूपल्-द्यु-चो-रि के पहाड़ में एकांत जीवन बिता रहे थे। उन्होंने ने खिय-र-ध्ये-ड्-प भिक्षु को आते देखा। पूछने पर ग्लड्-दर्-म के अत्याचार की बात मालूम हुई। इस पर वह तीनों भिक्षु अपने 'विनय' ग्रंथों को समेट कर, एक खंजर पर लाद कर, मूड-ऽ-रिस् (मानसरोवर) की ओर भाग कर चले गए। वहाँ से वह तुर्किस्तान (होर्) पहुँचे। वहाँ उन्होंने बौद्ध-धर्म का प्रचार करना चाहा, किंतु भाषा और जाति के भेद के कारण वह उस में सफल न हो सके और वहाँ से दक्षिण की ओर चले गए।

बौद्धों ने गलती की थी, और उस का दंड मिलना भी जरूरी था। तो भी इन पौने तीन सौ वर्षों में बौद्धधर्म ने भोट देश की बहुत सेवा की थी। यह संभव नहीं था कि इस थोड़े से अपराध के लिए वह मिटा दिया जाता। अंत में प्रतिक्रिया का रुख बदला। लोग वस्तुतः वर्तमान को ही पूरी तरह जानते हैं। अब बौद्ध अधिकारियों के गुण-दोष तो घीती हुई वस्तु हो गए थे, लेकिन लोग दर्-म के वर्तमान अत्याचारों को देख रहे थे। अब वह उस से ऊबते जा रहे थे। उस समय (ल्ह-लुड) दूपल्-ग्यि-दो-जें नामक एक भिक्षु येर् पडि-ल्हस्-बिड्-पो पार्यत्य स्थान में ध्यान-रत था। उसने जब यह सब बातें सुनीं तो वह अपने को रोक न सका। उसने भीतर से सफेद और बाहर से काली एक पोस्तीन धारण की; हाथ में लोहे के धनुष-बाण लिए, और फिर वह अपने सफेद घोड़े को स्याही से काला कर, उस पर सवार हो ल्हासा की ओर चल पड़ा। राजा उस समय जो-खड् के पास स्थापित महास्तंभ (दो-रिड्) पर खुदे लेख

को पद रखा था। मशर ने घोड़े में उतर कर बंदना करने के बहाने से गौर का पैसा निशाना मारा, कि वह जा कर टोक राजा के कानों में लगा। अब वह इस घोष के साथ कि यदि किसी पापी राजा को मारना हो, तो ऐसे मारना चाहिए, घोड़े पर सवार दो पर निकल भागा। हद्दामा में शोर मच गया। लेकिन जनता तो पहले ही राजा से विरक्त हो चुकी थी। किसी ने उसे न पकड़ पाया। दुपल-दो-ने एक जलाराय में जा कर घोड़े को ग्याही घो, अपनी पोस्तोन का मार्केद हिम्मा ऊपर कर के चलना बना। अपने ग्यान पर पहुँच वह 'अभिधर्मसमुगय' (असंग), 'प्रभावती' (विनय-टोका), और 'कर्मशतक' की पोथियों को ले कर रमम् को आर चला गया। मरने तक दूर-म ने यह शब्द कहे थे—“वयों न मैं तीन वर्ष पूर्ण मारा गया, जिस में कि मैं इतने पाप और अत्याचार से बच जाता, या तीन वर्ष याद मारा जाता जिस में कि मैं बौद्धधर्म को देश में मिया सकता।”^१

जेद-मुड्डू (८४२-९०५ ई०)—दूर-म के मरने के बाद उस को पकड़ रानी ने भवती होने का बहाना किया, और जब हँड़ने पर उसे एक लड़का मिला, तो मंत्रियों को दिग्बला कर कहा—‘वह मेरा लड़का है’। दौतपाले बच्चे को देखकर मंत्री जाल समझ गए, और बोले—अच्छा यह जाये अपनी माँ की आज्ञा-पालन करे। इस पर माँ का आज्ञा-पालक (युग्-वर्तन) ही उस का नाम पड़ गया। छोटी रानी का लड़का जेद-मुड्डू (कारयप) गद्दी का मालिक हुआ। यद्यपि यह और इस के पुत्र दुपल-दखोर-व-वन् (९०५-२३ ई०) ने दूर-म की भूल को नहीं दुहराया, किंतु अब राजशक्ति क्षीण हो गई थी। इसी समय राज्य के कितने ही भाग स्वतंत्र हो गए।

दुपल-दु-बोरि से अपनी पुस्तकें खशर पर लाद कर भाग हुए तीन भिक्षुओं के बारे में मैं पहले कह चुका हूँ। जब वह दक्षिण अग्-दो में रहते थे, तो पता पा कर दुगोड्डू-क बस्ती के रहने वाले एक तरुण ने उन के पास आ कर प्रव्रज्या पाने की प्रार्थना की। इस पर भिक्षुओं ने उसे 'विनय' की एक

^१ 'ऐतिहासिक अद् इंडियन डिपेंड', भाग २, पृष्ठ १२३।

पुस्तक पढ़ने को दो, और कहा, यदि यह बातें तुम्हें स्वीकार हों, तो हम तुम्हें श्रामणेर बनायेंगे। तरुण ने पढ़ कर इस की प्रार्थना की। इस पर वह श्रामणेर बनाया गया, और नाम (दूगोड्स-प) रव्-ग्सल् (प्रकाश) पड़ा। पोछे उस ने भिन्न बनाए जाने की प्रार्थना की, किंतु वहाँ संघ का कोरम पूरा करने के लिए पाँच भिन्न न थे, कोरम के लिए और दो भिन्नियों की तलाश करते हुए उसे (ल्ह-नुड) दूपल् - दो - जें मिला। प्रार्थना किए जाने पर उस ने कहा, मैं ने राजा को मारा है, इस लिए 'पाराजिक' अपराध का अपराधी होने से अब मैं भिन्न नहीं रहा। फिर ढूँढने पर उसे क्ये-वड् और ग्यि-वड् दो ह्-शड् (चीनो भिन्न) मिले। इस प्रकार पंच-गण संघ बना कर उस ने भिन्न की दीक्षा पाई। यह रव्-ग्सल् आचार्य शांतरक्षित की परंपरा का आगे चलाने-वाला पुरुष हुआ। पोछे द्बुस् प्रदेश के पाँच पुरुष (क्लु-मेस-) छुल्-क्लिम्स्, शेस्-रव्-ल्दिड्-ये-शेस्-योन्-तन्, (रग्-शि) छुल्-क्लिम्स्-ड्युड्-ग्नस्, (व) छुल्-क्लिम्स्-व्लो-ग्नोस् और (सुम्-प) ये-शेस्-व्लो; तथा ग्यड् प्रदेश के पाँच पुरुष—गुर्-भो- (रव्-ख-प) व्लो-स्तोन्, दो-जें द्बड्-म्युग्, (शव्-सगो-ल्डडि-ओड्-व्चुन्) शेस्-रव्-सेड्-गे, (मड्-रिस्) जोद-वर्ग्यद्, और (फो-ओड्-) उ-प-दे-दकर-पो—यह दश व्यक्ति आ कर भिन्न रव्-ग्सल् के शिष्य हुए। इन्हीं दस भिन्नियों ने लौट कर मध्य तिब्बत में फिर से प्रचार करना शुरू किया। गिड्-म-प संप्रदाय के सभी मठ इन्हीं की परंपरा से संबंध रखते हैं।

३—दीपंकर-युग (१०४२-११०२)

स्रोड्-व्चुन् के वंश ने लगातार पौने तीन सौ वर्ष तक अपने विस्तृत साम्राज्य को कायम रक्खा। धर्म की असाधारण भक्ति रखते हुए भी इन में सात पीढ़ियों तक शासक और योद्धा की योग्यता बनी रही। ऐसे उदाहरण बहुत कम मिलते हैं। भारत में गुप्त-सम्राटों का वंश वीर पैदा करने में मशहूर रहा है, किंतु वह भी दो सौ वर्ष तक ही चला। मुगल बादशाह भी पाँच पीढ़ियों तक ही प्रवल रहे। किंतु दर्-म के बाद पतन शीघ्रता से होने लगा। दूपल्-

ऽखोर्-व-चन् (४०९८३ई०) तक जो बुद्ध वचा था वह भी उस के बाद जाता रहा। तिव्यत खास ही अनेक टुकड़ों में बँट गया। क्रांति के कारण ऽखोर्-व-चन् का दूसरा पुत्र खि-स्-क्वियद्-ल्दे-बि-म-म्गोन् लहासा छोड़ने पर मजबूर हुआ। वह एक सौ सवारों के साथ पश्चिमी तिव्यत (म्हुड-रिस्) की ओर चला गया। वहाँ अपने विश्वास-पात्र मेवकों की सहायता से उस ने अपने लिए स्थान बना लिया। अश्व-वर्ष (९८२ ई०) में उस ने र-ल में लाल-महल बनवाया। मेप-वर्ष (९८३ ई०) में चे-शी-ग्य-रि नामक महल बनवाया। इसी वक्त सुपुद्-रड्स् के शासक द्यो-व्शेस्-व्चन् ने उसे अपनी राजधानी में बुलाया और अपना कन्या ऽत्रो-स्-ऽखोर्-स्-क्वोड् के साथ अपना राज्य उसे प्रदान किया। बि-म-म्गोन् ने फिर म्हुड-रिस्-स्कोर-नासुम् (लदाख, गूगे, और सुपु-रड्स्) को अपने अधिकार में कर के एक स्वतंत्र राज्य कायम किया। अंत में राज्य को इस ने अपने तीनों पुत्रों—दूपल्-गिय-ल्दे (लदाख), व्क-शिस-ल्दे-म्गोन् (सुपु-रड्म्) और ल्दे-ग्चुग्-म्गोन् (शड्-शुड या गूगे) में बाँट दिया। ल्दे-ग्चुग्-म्गोन् का वपेष्ठ पुत्र ऽगोर्-ल्दे राज्य को अपने छोटे भाई खोड्-ल्देके हाथ में सौंप कर स्वयं अपने दोनों पुत्रों, नागराज और देवराज के साथ भिजु हो गया।

ग्यारहवीं शताब्दी के प्रथम पाद में तिव्यत में बौद्धधर्म में बहुत से विकार पैदा हो गए थे। भिजुओं ने धर्म-ग्रंथों का पढ़ना छोड़ दिया था। वह वर्पा-वास के तीन मास तक ही भिजु-आचार का पालन करते थे, उस के बाद उस की परवा नहीं करते थे। तांत्रिक लोग मद्य और व्यभिचार को ही परम धर्म-चर्या मानते थे। मठों के अधिकारी चमकौली वेप-भूपा पहिन कर, अपने को स्वधिर और अर्हत् प्रकट करते फिरते थे। ऽखोर्-ल्दे (भिजु बनने पर इस का नाम ये-शेम्-डोद अर्थात् ज्ञानप्रभ पड़ा) ने स्वयं धर्म-ग्रंथों को पढ़ा था, और वह एक विचारशील व्यक्ति था। इस का रो इसी से फला सफल है, कि संतों के बुद्ध-वचन होने में उसे बहुत संदेह था। वह अच्छी तरह समझता था,

कि बौद्धधर्म ही उस के पूर्वजों की एक चिरस्थायी कृति है। धर्म के इस हास को हटाने के लिए उस ने सब से जहरी बात समझी—धार्मिक ग्रंथों का अध्ययन। इस के लिए उस ने रिन्-छेन्-व्सङ्-पो (९५८-१०५५ ई०), लेग्स्पडि-शेस्-रव् आदि इक्कीस तरहों को चुन कर कश्मीर पढ़ने के लिए भेजा। मान-सरोवर जैसी ठंडी जगह के रहने वाले इन नौजवानों के लिए कश्मीर भी गर्म था। अंत में दो को छोड़ कर बाकी सब वहाँ बीमारी से मर गए। रिन्-छेन्-व्सङ्-पो ने लौट कर पंडित श्रद्धाकरवर्मा, पद्माकरगुप्त, बुद्ध श्रीशांत, बुद्धपाल, और कमलगुप्त आदि की सहायता से कितने ही दर्शन और तंत्र-ग्रंथों के भोट भापा में अनुवाद किए। 'हस्तवाल-प्रकरण' (आर्यदेव), 'अभिसमयालंकारालोक' (हरिभद्र), 'वैद्यक अष्टांग-हृदसंहिता' (नागार्जुन), 'चतुर्विपर्यय-कथा' (मातृचेट) 'सप्तगुणपरिवर्णन-कथा' (वसुबंधु), 'सुमागधावदान' आदि ग्रंथों के इन्हीं ने अनुवाद किए। पीछे दीपंकर श्रीज्ञान (९८२-१०५४ ई०) के तिब्बत पहुँचने पर और भी कितने ही ग्रंथों के भाषांतर करने में सहायता की। रिन्-छेन्-व्सङ्-पो ने गू-गे (शङ्-शुङ्) स्फिति और लदाख में कई सुंदर मंदिर बनवाए, जिन में कई^१ अब भी मौजूद हैं, और उन में उस समय की भारतीय चित्रकला के सुंदर नमूने पाए जाते हैं।

राजभिच्छु ज्ञानप्रभ ने जब देखा, कि उन के भेजे इक्कीस तरहों में उन्नीस कश्मीर से जीवित नहीं लौट सके, तो उन्होंने ने सोचा कि यहाँ से भारत में विद्यार्थियों को भेजने के स्थान पर यही अच्छा होगा, कि भारत से ही किसी अच्छे पंडित को यहाँ बुलाया जावे, जो यहाँ आ कर सुधार का काम करे। उन्हें यह भी मालूम हुआ, कि विक्रमशिला महाविहार में ऐसे एक पंडित भिच्छु दीपंकर श्रीज्ञान हैं। उन के बुलाने के लिए आदमी भेजा गया, किंतु वह न आए।

^१ लदाख में सुम्-दा ओर अल्-ची के मंदिर, और स्फिति का ल्ह-लुङ् मंदिर इन्हीं में से है। इन में सारे ही चित्र भारतीय चित्रकारों के बनाए हैं। दसवीं-ग्यारवीं शताब्दी की चित्रकला के यह सुंदर फोंदा हैं। खेद है कि रक्षा का कोई प्रबंध न होने से यह नष्ट होते जा रहे हैं।

दूसरी बात फिर दूत भेजने की तैयारी हुई। इस के लिए बुद्ध माने का संप्रदाय करने जय यह अपने सीमांत प्रदेश में गए हुए थे, उसी समय पड़ोसी राजा ने उन्हें पकड़ लिया। उन के उत्तराधिकारी ब्यह-सुपु-ओद् (घोधिप्रभ) ने चाहा, कि धन दे कर उन्हें छोड़ा लें, किंतु ज्ञानप्रभ ने कहा, यह धन भारत में किसी पंडित के चुलाने में खर्च किया जाय।

ग्यारहवीं शताब्दी में विक्रमशिला विहार (वर्तमान मुज्जानगंज, जिला, भागलपुर) उत्तरी भारत में एक बड़ा ही विशाल विशाल विद्याकेन्द्र था। युवराज हर्षने की अथवा में चंद्रगुप्त विक्रमादित्य पंचा का प्रदेशाधिकारी था। उस वक्त मुल्लानगंज की दोनों पहाड़ी टेकरियों पर उस ने बुद्ध मंदिर बनवाए थे, और उसी के नाम पर यह स्थान विक्रमशिला के नाम से प्रसिद्ध हुआ। पीछे पालवंशीय महाराज धर्मपाल (७६९-८०९ ई०) ने गंगा-नटवती इस मनोरम स्थान पर एक सुंदर विहार बनवाया, यहाँ विक्रमशिला महाविहार हुआ। इस विहार के कुछ ही दूर दक्षिण में एक सामंत राजा की राजधानी थी, जिस के यहाँ दीपंकर श्रीमान का जन्म हुआ था। नालंदा, राजगृह विक्रमशिला, वज्रासन (बोधगया) ही नहीं बल्कि सुदूर सुवर्ण द्वीप (सुमात्रा) तक जा कर दीपंकर ने विद्याध्ययन किया। पीछे यह विक्रमशिला के आठ महापंडितों में एक हो कर वहीं अध्यापन का कार्य करने लगे। यद्यपि पहली बार राजभिद्रु ज्ञानप्रभ के निमंत्रण को उन्होंने अस्वीकार कर दिया था, किंतु जय राजभिद्रु घोधिप्रभ के भेजे दूतों के गुरु से उन्होंने ज्ञानप्रभ के महान् त्याग की बात सुनी, तो चलने के लिए उन्होंने अपनी स्वीकृति दे दी। इस प्रकार १०४२ ई० (जल-अश्व वर्ष) में यह मङ्ग-ड-रिस् पहुँचे। भोट देशवासियों ने उन का बड़ा स्वागत किया। पहले मानसरोवर के पश्चिम में अवस्थित थो-ग्लिङ् (शङ्-शुङ्) मठ में रहे। यहाँ उन्होंने अपना प्रसिद्ध ग्रंथ 'घोधिपचप्रदीप' लिखा। १०४४ में वह सुपु-र-ड-गए। यहाँ उन्हें (ड्रोम-स्तोन्) र्ग्यल्-यडि-ड्युङ्-गून्म् (१००३-६४ ई०) मिला। यह उन का प्रधान शिष्य था, और तब से अंत तक यह बराबर अपने गुरु के साथ रहा। दीपंकर (अतिशा) के अनुयायी (ड्रोम-स्तोन् की शिष्यपरंपरा वाले) व्क-ड-म्-प के नाम से प्रसिद्ध हुए। चोङ्-ख-प (१३५७-

१४१९ ई०) का भी इसी बृक्ष-दम्-प संप्रदाय से संबंध था और इसी लिए उस के अनुयायी द्रो-लुगस्-प अपने को नवीन बृक्ष-दम्-प भी कहते हैं।

दीपंकर श्रीज्ञान ने अपने जीवन के अंतिम तेरह वर्ष तिब्बत देश में धार्मिक सुधार और ग्रंथानुवाद में बिताए। मड-डरिस् से वह गुचुङ् और ड्युस् प्रदेशों में गए। १०४७ ई० में वह ब्रूम-यस् पहुँचे। उस वक्त वहाँ के पुस्तकभंडार को देख कर वह दंग रह गए। वहाँ उन्हें कुछ ऐसी पुस्तकें भी देखने को मिलीं जो भारत के बड़े बड़े विद्यालयों में भी दुर्लभ थीं। १०५० ई० में वह येर-प गए, और १०५१ ई० (लोह-शश वर्ष) में उन्होंने 'कालचक्र' पर अपनी टीका लिखी। १०५४ ई० में ७३ वर्ष की अवस्था में लहासा से आधे दिन के रास्ते पर सूत्रे-थङ् स्थान में, उन का शरीर अंत हुआ।

अनुवाद करने में उन के प्रधान सहायक (नगु-द्यो) छुल्-ग्रिमस्-ग्यल् व, रिन्-छिन्-बस्-ङ्पो, द्रो-वडि-ब्लो-ग्रोस् और शाक्य—ब्लो-ग्रोस् थे। इन के अनुवादित और संशोधित ग्रंथों की संख्या सैकड़ों है। महान् दार्शनिक भाव्य (भावविवेक) के ग्रंथ 'मध्यमकरत्नप्रदीप' और उस की व्याख्या को इन्होंने ही (ग्य) चोन्-सेङ् और नगु-द्यो के दुभाषिया होते हुए, अनुवादित किया था।

पंडित सोमनाथ (१०२७ ई०)। दीपंकर श्रीज्ञान के भोट पहुँचने से कुछ पूर्व करमीरी पंडित सोमनाथ भोट गए। (ग्य-चो) सु-वडि-डोद्-सेर की सहायता से इन्होंने 'कालचक्र ज्योतिष' का भोट भापा में अनुवाद किया, और तभी से भोट देश में बृहस्पति चक्र के ६० संवत्सरों का नया क्रम जारी हुआ। साठ संवत्सरों के एक चक्र को भोट भापा में रव-ड्युङ् (प्रभव) कहते हैं। यह प्रभव हमारे वहाँ के भी पष्ठी संवत्सर-चक्र का आदिम संवत्सर है। लक्ष्मी-कर, दानश्री चंद्रराहुल, सोमनाथ के साथ ही भोट देश गए थे।

दीपंकर श्रीज्ञान के विद्यागुरु सिद्ध महापंडित अवधूतिपा (अद्वयवच

या मैत्रीपा भी) थे। इन्हीं के शिष्य धैशालो (बसाढ, जि० मुअफकरपुर) के रहने वाले कायस्थ पंडित गयाधर थे। यह (ऽवोग्-मि) शाक्य ये-शेस् (मृत्यु १०७४ ई०) के निर्मंत्रण पर भोट गए। और पाँच वर्ष रह कर इन्होंने बहुत से तंत्र-ग्रंथों के भोट भाषा में अनुवाद किए। चलते वक्त ऽवोग्-मि ने इन्हें पाँच सौ तोला सोना अर्पित किया। यह स्वयं भी हिंदी भाषा के कवि थे, इन के पुत्र तिरूपा एक पहुँचे हुए सिद्ध समझे जाते थे। पंडित गयाधर ने (गिर्य-जो) स-वडि-डोद्-सर् के साथ 'बुद्धकपाल-तंत्र' का अनुवाद किया था, और (ऽजोस् ल सुग्-प) ल्ह-बूचस् के साथ 'वघ्नढाकतंत्र'^१ का।

ज्ञानप्रभ के समय में ही लो-च-व पद्धारुचि ने स्मृतिज्ञानकीर्ति और सूद्धम-दीर्घ दो भारतीय पंडितों को अनुवाद के कार्य के लिए बुलाया। लो-च-व हैचें से नेपाल में मर गया, और यह लोग भोट में पहुँच गए। इन्हें उस समय भाषा भी न आती थी। पंडित सूद्धमदीर्घ तो (रोद्-प) छोस्-चस्ड् के पास रहने लगे, किंतु स्मृतिज्ञानकीर्ति ने किसी का आश्रय ढूँढने की अपेक्षा भेड़ की चरवाही पसंद की। यह मालूम नहीं, कितने वर्षों तक तिव्वत के खानाबदोरा व्यङ्-प की भाँति इन्होंने चँबरी के बालों के काले तंतुओं में रह, तेन्ग में चरवाही का जीवन व्यतीत किया। स्मृतिज्ञान, मालूम होता है, कोई मस्त मौला ही थे। इस भेड़ की चरवाही में एक फायदा जरूर हुआ, यह यह कि उन्हें भोट भाषा का सुंदर अभ्यास हो गया। स्मृतिज्ञान और विभूतिचंद्र (१२०४ ई०) जैसे बहुत थोड़े ही भारतीय पंडित हैं, जिन्होंने बिना लो-च-व की सहायता के भारतीय ग्रंथों का भोट भाषा में अनुवाद किया हो। पीछे (सप्यल्-से-चव्) व्साद्-नमस्-र्यल्-मद्दन् के निर्मंत्रण पर स्मान-लुङ् में जा कर उसे इन्होंने बौद्ध ग्रंथों को पढ़ाया। फिर खमस् (पूर्वीय भोट) में जा कर ऽदन्-क्लोड्-थड् में अभिघर्मकोरा के अध्ययन के लिए एक विद्यालय स्थापित

^१ इस ग्रंथ की मूल संस्कृत प्रति ताल-पत्र पर लेखक को १९३० ई० में श-लु बिहार से प्राप्त हुई।

किया । इन्होंने 'चतुष्पीठ-टीका', 'वचनमुख' आदि कितने ही अपने लिखे ग्रंथों का भोट भापा में उलथा किया ।

शि-व-जोद् (ज्ञानप्रभ के भाई), राजा सोड्-ल्दे के पुत्र ल्ह-ल्दे थे । इन के तीन पुत्रों में बड़ा जोद्-ल्दे राजा हुआ, और व्यङ्-द्दुप्-जोद् और शि-य-जोद् दोनों छोटे लड़के भिन्न हो गए । दीपकर श्रीज्ञान को बुला कर जिस प्रकार व्यङ्-द्दुप्-जोद् ने धर्मप्रचार कराया, यह पहले लिखा जा चुका है । राजा जोद्-ल्दे ने पंडित सुनयश्री को बुला कर कितने ही ग्रंथों के अनुवाद कराए । शि-व-जोद् (शांतिप्रभ) स्वयं अच्छा विद्वान् था । इस ने जहाँ सुजन श्रीज्ञान, मंत्रकलश और गुणाकरभद्र से कितनी ही पुस्तकों के अनुवाद कराए वहाँ स्वयं आचार्य शांतरक्षित के गंभीर दार्शनिक ग्रंथ 'तत्त्वसंग्रह' का अनुवाद किया ।

चे-ल्दे । जोद्-ल्दे के बाद उस का पुत्र चे-ल्दे मानसरोवर प्रांत (शङ्-शुङ् और म्पु-रङ्) का शासक हुआ । १०७६ ई० में इस ने एक अच्छा विद्यालय स्थापित किया, और (डोंग्) व्लो-ल्दन-शेस्-न्व (१०५९-११०८) को उसी साल करमोर पढ़ने के लिए भेजा । १०९२ ई० तक डोंग् ने करमोर में रह कर पंडित परहितभद्र और भव्यराज से न्याय, तथा ब्रह्मण सज्जन और अमरगोमी आदि से योगाचार के कितने ही ग्रंथों का अध्ययन किया । पंडित भव्यराज अनुपमनगर (प्रवरपुर = श्रीनगर ?) के पृथ और चक्रधरपुर सिद्धस्थान में रहते थे । यहीं डोंग् ने धर्मकीर्ति के प्रसिद्ध न्याय-ग्रंथ 'प्रमाणवार्तिक'^१ का फिर से भोट भापा में अनुवाद किया । पंडित परहितभद्र की सहायता से इस ने धर्मकीर्ति के 'प्रमाणविनिश्चय' और 'न्यायविदु' के अनुवाद भी किए । चे-ल्दे के बाद उस के पुत्र राजा द्यङ्-ल्दे और पौत्र राजा वृक्-शिस-ल्दे भी डोंग् के काम में सहायता करते रहे । करमोर में सत्रह वर्ष रह कर डोंग् ने भोट में लौट कर चौदह वर्षों तक अपना काम किया । यहाँ

^१ प्रथम बार इस का अनुवाद दीपकर के साथी सुभृतिश्रीदासि और द्रो-वडि-व्लो-प्रोस् ने किया था ।

रहते हुए उस ने पंडित अनुलदास, गुप्तिकीर्ति, अमरधट और कुमारफणश के साथ अनुवाद का काम किया। प्रसिद्ध 'मनुधोगूलकल्प' का इस ने पंडित कुमारकलश के साथ मिल कर उल्था किया था।

फ-इन्-अ-अ-अ-अ-अ-अ (मू० १११८ ई०)। १०९२ ई० में यह भारतीय पंडित-मिद्ध भोट देश में आया। यह नेपाल के रास्ते ब-नम हो कर गुल्ड-स्कोर पहुँचा था। यहाँ रहते हुए इस ने कुछ ग्रंथों के अनुवाद में सहायता पहुँचाई। यह पूरा परित्राजक था। ११०१ ई० में यह चीन गया, १११३ ई० में फिर तिब्बत आया। इस ने शिन्-येद् संप्रदाय की स्थापना की, जिस का कि एक समय भोट देश में अच्छा प्रभाव था।

इसी काल में एक और विद्वान लोन्-य हुआ, जिस का नाम (प-इ-य) जिन्-म-अ-अ-अ (रविकीर्ति) है। इस का जन्म १०५५ ई० में हुआ था। अर्थात् उसी वर्ष जिन् वर्ष कि महान् लोन्-य रिन्-छेन् यस्-इ-पो का देहांत हुआ। इस ने करमोर में जा कर तेईस वर्ष तक अध्ययन किया। इस ने (आर्यदेव के), 'चतुःशतक शास्त्र', (चंद्रकीर्ति के) 'मध्यमकावतार-भाष्य' (पूर्णवर्द्धन की) अभियर्मकोशटीका 'लक्षणानुसारिणी', (चंद्रकीर्ति की) मूलमध्यक-मृत्ति 'प्रसन्नपदा' जैसे गंभीर दार्शनिक ग्रंथों के अनुवाद से अपनी मातृभाषा के कोश को पूर्ण किया। फनकवर्मा, तिलकलश आदि पंडित इस के सहायक थे।

(म-ग) छोन्-विय-व्लो-ग्रोम् । यह सिद्ध नारोपा (नाडपाद, मू० १०४० ई०) का शिष्य था, और तीन बार भारत में जा कर रहा था। इस ने अनुवाद का काम कम किया, किन्तु यह और मिन्-रस्-प (१०४०-११२३ ई०) जैसे इस के शिष्य अपनी विचित्र चर्या से तिब्बत में चौरामी सिद्धों के यथार्थ प्रतिनिधि थे। मिन्-रस्-प भोट देश का सर्वोत्तम कवि ही नहीं था, बल्कि इस के निरपृह अकृत्रिम जीवन ने इन आठ शताब्दियों में वहाँ बहुतों के जीवन में भारी प्रभाव डाला है। म-प, मिन्-र की परंपरा वाले लोग दुकर-ग्युं-प कहे जाते हैं। भोट देश के इग-स्-पो, ऽमि-गोड-प, फग्-मुव-प, ऽनुग्-प, स्तग्-लुड-प और सुक्कर-म-प इसी दुकर-ग्युं-प संप्रदाय की शाखाएँ हैं। क-म (सुक्कर-म) संघराज सुक्कर-म-वक्-सि-छोस्-ऽजिन् (१२०४-८३) अपने सिद्धत्व के

कारण मंगोल-सम्राट् का गुरु हुआ था। फग्-भुव्-प और ऽत्रि-गोड्-प ने कितने हो वर्षों तक मध्य भोट पर शासन किया।

४—स-स्वय-युग (११०२-१३७६ ई०)

(ऽखोन्) द्को-र्ग्यल् (१०३४-११०२ ई०) नाम के एक गृहस्थ धर्माचार्य ने, ग्चड् (चड्) प्रदेश में १०७३ ई० में स-स्वय नामक विहार की स्थापना की। यद्यपि इस विहार का आरंभ बहुत छोटे से हुआ, किंतु इस ने आगे चल कर बौद्धधर्म की बड़ी सेवा की। इस के संघराजों का प्रभाव भोट देश से बाहर चीन और मंगोलिया तक पड़ा। चंगेजखां (चिङ्-हिर-हान्) के शासन-काल में १२२२ ई० में यहीं के संघराज ने सर्व प्रथम मंगोलिया में बौद्धधर्म का प्रचार किया।

(ऽखोन्) द्कोन्-र्ग्यल् ने व-रि-लो-च-व (मृ० ११११ ई०) को अपना उत्तराधिकारी चुना। व-रि कितने ही समय तक भारत में जा कर वज्रासन (बोधगया) के आचार्य अभयाकरगुप्त के पास रहा था। अभयाकरगुप्त का जन्म भारखंड (वैद्यनाथ के आसपास का प्रदेश) में क्षत्रिय पिता और ब्राह्मणी माता से हुआ था^१। यह शास्त्रों के अच्छे पंडित थे। पीछे इन्होंने ने अवधूतिपा के शिष्य सौरिपा से सिद्ध-चर्या की दीक्षा ली। मगधेश्वर रामपाल (१०५७-११०२) के यह गुरु थे। नालंदा और विक्रमशिला दोनों ही विश्व-विद्यालयों के यह महापंडित माने जाते थे। इन का देहांत ११२५ ई० में हुआ।

व-रि ने अपना उत्तराधिकारी, मठ के संस्थापक द्कोन्-र्ग्यल् के पुत्र कुन्-द्गऽ-स्मिङ्-गो (१०९२-११५८) को चुना। उस के बाद उस के पुत्र यग्स्-प-र्ग्यल्-म्हन् (११४७-१२१६ ई०) विहाराधिपति हुए। यह अच्छे विद्वान् थे। इन्होंने दिङ्नाग के 'न्यायप्रवेश' और 'चंडमहारोपखतत्र' आदि ग्रंथों के अनुवाद किए।

(लो-कु) च्यम्स्-प-द्पल् (जन्म ११७३ ई०) इसी काल में हुआ था। यह

^१ 'रिन्-चेन्-ऽव्युद्-गन्स्-गत्तम्', पृ० ४७ ख।

काशिराज जयचंद के दीक्षा-गुरु मित्रयोगी^१ (जगन्मित्रानंद) को ११९८ ई० में भोट ले गया। मित्रयोगी को 'चतुरंगभर्मचर्या' का इस ने अनुवाद किया। १२०० ई० में करमोरी पंडित बुद्धश्री को बुला कर उन के साथ इस ने अभिसमयालंकार की टीका 'प्रज्ञाप्रदीप' का अनुवाद किया। इसी के निमंत्रण पर विक्रम-शिला के अंतिम प्रधान-स्वविर शाक्यश्रीभट्ट भोट देश में आए।

शाक्यश्रीभट्ट—इन का जन्म करमोरी में ११२७ ई० में हुआ था। घोष-गया, नालंदा, विक्रमशिला उस समय सारे बौद्धजगत् के जीवित केंद्र थे। इसी लिए यह भी भगध की ओर आए। मुखश्री इन के दीक्षा गुरु थे। रविगुप्त, चंद्रगुप्त, विख्यातदेव (छोटे घमासनीय), विनयश्री, अभयकीर्ति और रविश्रोत्रान इन के विद्यागुरु थे। अपने समय के यह महा-विद्वान् थे—यह तो इसी से मालूम होता है, कि यह भगध-नरेश के गुरु तथा विक्रम-शिला महाविहार के प्रधान नायक थे। मुहम्मद-विन्-घलितयार ने जब नालंदा और विक्रमशिला को ध्वस्त कर दिया, तो यह जगत्ला^२ (बंगाल) चले गए। वहाँ कुछ दिन रह कर, और संभवतः उस के भो ध्वस्त होने पर जब यह जगत्ला के पंडित विभूतिचंद्र, तथा दानशील, सघश्री (नेपाली), सुगतश्री आदि नौ पंडितों के साथ नेपाल में थे, तो वहीं इन्हें ऽर्यो-कु लो-च-व मिला। उस की प्रार्थना पर यह १२०० ई० में भोट देश में आ कर, दस वर्ष तक रहे। इन्होंने पुस्तक-अनुवाद का काम नहीं किया; और इन के ग्रंथ भी एकाध ही

^१ इन का जन्म राठ (पश्चिमी बंगाल) देश का था। सिद्ध तेलोपा के शिष्य ललिनवज्र से इन्होंने सिद्धचर्या की दीक्षा ली थी। पीछे उडन्तपुरी विहार के प्रधान हुए। काशीश्वर महाराज जयचंद इन के शिष्य थे ('ऽनुग-प-छो-ऽर्युड', पृष्ठ १५३ क; 'इंडियन हिस्टारिकल कार्टर्ली', मार्च १९२५, पृ० ४-३०)

^२ इसे भगधराज महाराज रामपाल (१०५७-११०२ ई०) ने अपने शासन के सातवें वर्ष (१०६४ ई०) में स्थापित किया था ('ऽनु-ऽर्युड', अष्टसाहसिका-टीका के अंत में)।

अनूदित हुए हैं, इस से जान पड़ता है, कि महाविद्वान् होते हुए भी, यह लेखनी के धनी न थे। स-सूक्त्य में पहुँचने पर तत्कालीन विहारराधिपति प्रगुस्-प-मर्यल्-मूङ्गन के भतीजे और उत्तराधिकारी, कुन्-दूगऽ-मर्यल्-मूङ्गन (११८२-१२५१ ई०) १२२८ ई० में इन के भिक्षु-शिष्य हुए। 'प्रमाणवार्तिक' आदि कितने ही न्याय के गंभीर ग्रंथों का उन्होंने ने इन से अध्ययन किया। व्यङ्-छुप्-दूपल् और दूगे वऽ-दूपल् आदि और भी कितने ही शाक्यश्रीभद्र के शिष्य हुए। स-सूक्त्य-संप्रदाय के पीछे इतने प्रभावशाली बनने में उस का विक्रम-शिला के अंतिम प्रधाननायक से संबंध भी कारण हुआ। दस वर्ष रह कर, १२१३ ई० में, शाक्य-श्रीभद्र अपनी जन्मभूमि कश्मीर को लौट गए, जहाँ १२२५ ई० में ९८ वर्ष की दीर्घ आयु में इन का देहांत हुआ। इन के अनुयायी विभूतिचंद्र, दानशील आदि भोट ही में रह गए, जिनमें विभूति का भोट भाषा पर इतना अधिकार हो गया, कि उन्होंने ने कितने ही ग्रंथों के अनुवाद बिना किसी लो-च-व की सहायता ही के किए।

कुन्-दूगऽ-मर्यल्-मूङ्गन, संघराज (१२१६-५१ ई०)। यह भोट देश के उन चंद धर्माचार्यों में हैं, जिन्होंने धर्मप्रचार के लिए बहुत भारी काम किया। भोट-देशीय ऐतिहासिकों के मतानुसार चंगेजखान (जन्म ११६२ ई०) ११९४ ई० में चीन का सम्राट् हुआ। १२०७ ई० में मि-अंग् प्रदेश को छोड़ कर सारा भोट उसके अधिकार में चला गया। जिस समय चंगेज देश-विजय कर रहा था, उसी समय स-सूक्त्य-बंधित कुन्-दूगऽ-मर्यल्-मूङ्गन ने धर्म-विजय की ठानी, और उन्होंने ने १२२२ ई० में मंगोल देश में धर्मप्रचारक भेजे। १२३९ ई० में मंगोल सर्दार झि-ग्य-दो-ती ने मध्यभोट पर चढ़ाई की, और स-सूक्त्य मठ के पाँच सौ भिक्षुओं को मार डाला। र-सूप्तेङ् और ग्यल्-खङ् के मठों को भी इसने जला डाला। १२४३ ई० में संघराज ने अपने दो भतीजों ऽफगुस्-प और फ्यगुन् को प्रचार के लिए मंगोलिया भेजा। १२४६ ई० में वह स्वयं चीन के मंगोल सम्राट् गोतन् से मिले, और दूसरे वर्ष सम्राट् के गुरु बने। सम्राट् ने १२४८ ई० में भोट देश के द्रुवुस् और गूचङ् प्रदेश अपने गुरु को प्रदान किए। भोट देश में धर्माचार्यों के शासन का सूत्रपात इसी समय से हुआ। धर्मप्रचार के

काम में लगे रहते हुए, मंगोलिया के संप्रभु-सूदे ध्यान में, १२५० ई० में, इनका देहांत हुआ। यह अच्युत पंडित और कवि थे। इनकी पुस्तक 'सम्बन्ध-लोग-सूत्र' की नीति-शिक्षा-पूर्ण गाथाएँ अथ भी भोट देश के पाठ्य-ग्रन्थों में हैं।

ऽफगम्-प, संघराज (१२५१-८० ई०)। इनका जन्म १२३४ ई० में हुआ था। इनके मंगोलिया जाने की बात पहले ही कही जा चुकी है। च्या की मृत्यु के बाद यह संघराज बने। स-सूय विहार में तब से अथ तक यही प्रथा चली आती है, कि घर का एक व्यक्ति भिक्षु बन जाता है, और वही पीछे संघराज के पद पर बैठता है। च्या ने ऽफगम्-प की शिक्षा का विशेष ध्यान रक्खा था। १२५१ ई० में ऽफगम्-प भायी चीन-सम्राट्, राजकुमार कुब्लै-कान के गुरु बने। १२६५ ई० तक यह चीन और मंगोलिया में ही रहे। १२६९ ई० में फिर मंगोलिया गए, और १२८० ई० में उनका देहांत हुआ।

गुरु-स-गर्-सि-धो-ऽजिन् (१२०४-८३ ई०)। सम्बन्ध के ऽफगम्-प का यह समकालीन था। यद्यपि पांडित्य में सम्बन्धों की समानता नहीं कर सकता था, किंतु यह अपने समय का अद्भुत चमत्कारी सिद्ध समझा जाता था। चीन के मंगोल-सम्राट् गुन-खे ने इसके सिद्धत्व की परीक्षा ली, और १२५६ ई० में उसने इसे अपना गुरु बनाया।

जिस समय सम्बन्ध-प और दुर्ग्युद्-प संप्रदाय के प्रमुख इस प्रकार विद्या, सिद्ध-चर्या, और धर्म-प्रचार के जोश में अपने प्रभाव को बढ़ा रहे थे, उसी समय आचार्य शांतरत्नित का अनुयायी, भोट का सब से पुराना धार्मिक संप्रदाय जिङ्-म-प नीचे गिरता जा रहा था। इसने पुराने योन्-धर्म की भूत-प्रेत-पूजा, जादू-मंत्र को अपना कर, उसमें और और तरकी की। इसके गुरु लोग मिथ्या-विश्वास-पूर्ण नई नई पुस्तकें बना कर, उन्हें बुद्ध, पद्मसंभव या किसी और पुराने आचार्य के नाम से पत्थरों और जमीन से खोद कर निकाल रहे थे। गनेर्-सूतो ने १११८ ई० में और जिङ्-म-धर्माचार्य स-दुवद् ने १२५६ ई० में, ऐसे ही जाली ग्रंथों को खोद निकाला था।

सूक्त-म-वक्त-सि के मरने (१२८२ ई०) पर, उस के योग्य शिष्यों में से न चुना जा कर, एक छोटा बालक रङ्-ऽच्युङ्-दो-जे (जन्म १२८४ ई०) उस का अवतार स्वीकार किया गया। इस से पूर्व यद्यपि एकाध ऐसे उदाहरण थे, किन्तु अब तो अवतारो लामों की बीमारी सी फैल गई। सूक्त-म की देखा-देखी पोछे ऽत्रि-गुङ्-प, ऽनुगु-प आदि दूक्त-ग्युङ्-प निकायों ने इस प्रथा को अपनाया। आगे चल कर चोङ्-ख-प के अनुयायियों ने भी अपने दलाई-लामा (ग्युङ्-य-रिन्-पो-छे) और टशी लामा (पण्-छेन्-रिन्-पो-छे) के चुनावों में ऐसा ही किया; और इस प्रकार आजकल छोटे छोटे मठों से ले कर बड़े बड़े जागीरवालों महंतशाहियों के लिए ऐसे हज्जारों अवतारो लामा तिब्बत में पाए जाते हैं। इस प्रथा के इतने अधिक प्रचार का कारण क्या है? गद्दीधर के बाल्यकाल में कुछ स्वार्थियों को मठ का सारा प्रबंध अपने हाथ में रखने का मौका मिलता है; और अवतारो लामा के माँ-बाप और संबंधियों के लिए मठ एक घर की संपत्ति सो बन जाता है। लेकिन इस प्रथा के कारण उत्तराधिकार के लिए विद्या और गुण का महत्त्व जाता रहा, और फिर अधिकांश नालायक लोग इन पदों पर आने लगे।

बारहवीं शताब्दी में चौरासी सिद्धों के बहुत से हिंदी दोहों और गीतों के भो भोट भाषा में अनुवाद हुए। इसी समय (शोङ्-स्तोन्) दो-जे-ग्युङ्-मूङ् (मृत्यु ११७७ ई० ?) ने पंडित लक्ष्मीकर की सहायता से 'काव्यादर्श' (दंडी), 'नागातंद' (हर्षवर्द्धन), और 'योधिसत्त्वावदानकल्पलता' (क्षेमेंद्र) ग्रंथों के भोट भाषा में भाषांतर किए।

अब मठों के हाथ में शासन का अधिकार आने पर उन्होंने भी वही करना शुरू किया, जो शासकों में हुआ करता है। १२५२ ई० में स-सूक्तवालों ने भोट के तेरह प्रांतों पर अधिकार कर लिया। १२८५ ई० में ऽत्रि-गोङ् के अधिकारियों ने अपने विरोधी व्य-युल् मठ को जला डाला। १२९० ई० में स-सूक्तवालों ने ऽत्रि-गोङ् को लूट लिया।

(बु-स्तोन्) रिन्-छेन्-मुब् (१२९०-१३६४ ई०)। तेरहवीं सदी के अंत के साथ, भारत के बौद्ध केंद्रों में बौद्धधर्म का अंत हो गया। अब भोट देश को

सजोव बौद्ध-भारत से विचारों के दानादान का अवसर न रह गया। भोट में भी अब प्रभावशाली महंतशाहियों की प्रतिद्वंद्विता का समय आरंभ हुआ। अब तक जितने भी भारतीय ग्रंथ भोट भाषा में अनूदित हुए थे, उन को क्रम लगा कर इकट्ठा संगृहीत करने का काम नहीं हुआ था, इस लिए सारी अनुवादित पुस्तकों का न किसी को पता था, और न वह एक जगह मिल सकती थीं। ऐसे समय (१२९० ई०) में (बु-स्तोन) रिन्-त्सेन्-मृन् का जन्म हुआ। यह शं-लु विहार में जा कर भिन्न हुए। यह अपने ही समय के नहीं, बल्कि आज तक के, भोट देश के अद्वितीय विद्वान हुए। शुरू में स-स्वय मठ में भी यह अध्यापन का काम करते रहे, जिससे इन्हें वहाँ के विशाल पुस्तकालय को देखने का अवसर मिला। यद्यपि इन्होंने 'कलापघातु-काय' (दुर्गासिंह), 'त्याद्यन्तप्रक्रिया' (हर्ष कीर्ति) आदि कुछ थोड़े से ग्रंथों के अनुवाद किए हैं; किंतु, इन का दूसरा काम बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। इन्होंने अपने समय तक के सभी अनुवादित ग्रंथों को एकत्रित कर क्रमानुसार दो महान् संग्रहों में जमा किया, यही सूक्-ऽग्युर (कन्-जुर्) और स्तन्-ऽग्युर (तन्-जुर्) हैं। इन में सूक्-ऽग्युर में तो उन ग्रंथों को एकत्रित किया, जिन्हें बुद्ध-वचन कहा जाता है ('सूक्' शब्द का अर्थ भोट भाषा में 'वचन' होता है) 'स्तन्' का अर्थ है शास्त्र, और 'ऽग्युर' कहते हैं, अनुवाद को। स्तन्-ऽग्युर में बुद्ध-वचन में भिन्न-आचार्यों के दर्शन, काव्य, वैद्यक, ज्योतिष, देवता-साधन, और सूक्-ऽग्युर, तथा स्तन्-ऽग्युर की टीकाएँ तथा कितने ही और ग्रंथों की टीकाएँ संगृहीत हैं। इन्होंने इन संग्रहों को अपने ही तत्वावधान में और एक निश्चित क्रम से लिखवा कर अलग अलग वेष्टनों में विभक्त किया। साथ ही ग्रंथों की सूची भी बनाई। यह मूल प्रति अब भी शं-लु-विहार में (जो कि ग्याँचो से दो दिन के रास्ते पर है) मौजूद है। बु-स्तोन ने स्वयं पचामों ग्रंथ लिखे, जिन में एक में भारत और भोट देश में बौद्धधर्म के इतिहास (१३२२ ई० में लिखित) का महत्त्वपूर्ण वर्णन है। १३६४ ई० में शं लु विहार में इस महान् विद्वान के देहांत के साथ भोट देश के धार्मिक इतिहास के सब से महत्त्वपूर्ण गंड की समाप्ति होनी है।

मस्सक्य-युग के अंत में (यर्लुङ्) प्रग्स्-प-ग्यल्-मङ्गन, चंद्रगोमी के 'लोकानंद' नाटक और कालिदास के 'मेघदूत' तथा कुल्लु और ग्रंथों के अनुवादक व्यङ्-ह्युप्-चे-मो (१३०३ ई०) जैसे कुल्लु और विद्वान् अनुवादक हुए ।

५—चोङ्ख-प-युग (१३७६-१६६४)

चोङ्ख-प । बु-स्तोन् के देहांत के सात वर्ष पूर्व (१३५७ ई० में) अम्-दो प्रांत के चोङ्ख-प ग्राम में एक मेधावी बालक उत्पन्न हुआ जिस का भिजु-नाम यद्यपि ब्लाो-व्सङ्-प्रग्स्-प (सुमतिकीर्ति) है, तो भी वह अधिकतर अपने जन्म-ग्राम के नाम से चोङ्ख-प (चोङ्ख-वाला) ही कर के प्रसिद्ध है । अम्-दो ल्हासा से महीनों के रास्ते पर मंगोलिया की सीमा के पास एक छोटा सा प्रदेश है । चोङ्ख-प के पूर्व यह प्रदेश अशिक्षित लोगों का ही निवास-स्थान समझा जाता था । सात वर्ष की अवस्था (१३६३ ई०) में यह दोन्-रिन्-प का श्रामण्य बनाने लगा । तब से पंद्रह वर्ष की अवस्था तक वहीं अध्ययन करता रहा । तब उसे विशेष अध्ययन के लिए अच्छे अध्यापकों को आवश्यकता हुई, और १३७२ ई० में मध्य-भोट में चला आया । उन्नीस वर्ष की छोटी अवस्था (१३७६ ई०) में उस ने अपना प्रथम ग्रंथ लिखा । (रे-म्द-प) ग्शोन्-नु-ब्लाो-प्रोस् से इस ने दर्शन-शास्त्र पढ़ा । 'विनय' में इस का गुरु बु-स्तोन् का शिष्य (द्मर्-स्तोन्) ग्य-म्ध्रो-रिन्-छेन् था । चोङ्ख-प बु-स्तोन् के ग्रंथों से बहुत प्रभावित हुआ, और वस्तुतः उस के इतने महान् कार्य को संपन्न करने में बु-स्तोन् के कार्य ने बहुत उत्साह प्रदान किया । उस को अफसोस था, कि क्यों न मुझे बु-स्तोन् के चरणों में बैठ कर अध्ययन करने का सौभाग्य मिला । इस ने स-स्वय-प, द्कर-ग्युद्-प और (दीपकर के अनुयायी) व्क-दम्-प तीनों ही संप्रदायों से बहुत सी बातें सीखीं । इस के अनुयायी अपने को व्क-दम्-प के अंतर्गत मान कर अपने को नवोन व्क-दम्-प कहते हैं । वस्तुतः जिस प्रकार व्क-दम्-प मठ स्वेच्छा से द्गो-लुग्स्-प (चोङ्ख-प के संप्रदाय) में परिणत हो गए, उस से उन का यह कहना अयुक्त भी नहीं है ।

चोङ्ख-प के जन्म से दो वर्ष पूर्व (१३५४ ई० में) फग्-मुक् के

(विन्तु) ब्यट्ट-सुप्-गर्गन् (जन्म १३०३ ई०) ने सारे गुज्ज प्रदेश पर अधिकार कर लिया था । १३४९ ई० में उस ने गुज्ज प्रदेश को भी अपने राज्य में मिला लिया । इस प्रकार चोह-स-प के कार्य-क्षेत्र में पदार्पण करने के समय मध्य-भोट में एक मुहम्मद शासन स्थापित हो चुका था । किन्तु धार्मिक स्थिति बहुत बुरी थी । यह-यह विद्वान् एक एक कर के चल बसे थे । पुराने विद्या-केंद्र अपना वैभव गँव चुके थे । मूढन्-त्रिद-प (दर्शनवादी) और यूक-द-प यद्यपि अथ भो ज्ञान और वैराग्य की ज्योति जलाए हुए थे, किन्तु यह ज्योति पहाड़ों की गुफाओं और देश के गुमनाम कोनों में छिपी हुई थी । चोह-स-प में ज्ञान और वैराग्य, अथवा प्रज्ञा और सगाधि दोनों उचित मात्रा में मौजूद थीं; और उस से भी अधिक उस में धर्म की विगड़ी अवस्था के सुधारने की लगन थी । यह विद्वान्, सुवक्ता और सुलेखक था, और अपनी और योग्य व्यक्तियों को आकर्षण करने की शक्ति रखता था । इतने आंगिक योग्य और कार्य-सुशल शिष्य किन्हीं भी भोट-देशीय आचार्यों को न मिले । सु-सूतोन् का सारा काम एक अकेले व्यक्ति का था । १३९५ ई० तक चोह-स-प का विश्वार्थी जीवन रहा । १३९६ ई० में अथ यह अपने जीवनोद्देश्य—बौद्धधर्म में आई बुराइयों के दूर करने और विद्या-प्रचार—में लग गया । यह समझता था, कि लोगों का मिथ्या-विश्वास हटाया नहीं जा सकता, जब तक कि उन में दर्शन-शास्त्र तथा विद्या का प्रचार न किया जाय । उस के इस काम ने मूढन्-त्रिद-प के काम को ले लिया, और इस प्रकार कुछ ही समय में मूढन्-त्रिद-प के सारे बड़े-बड़े-सु-संप्रदाय में शामिल हो गए । १३९६ ई० में इस ने गुज्ज का महाविद्यालय स्थापित किया । १४०५ ई० में ल्हासा में संघ-संमेलन के लिए एक विशाल भवन (स्मोन्-लम्-छेन्-पो) बनवाया, और उन्हीं वर्ष ल्हासा से दो दिन के रास्ते पर द्वा-ल-वन् (गन्दन्) का महाविहार स्थापित किया । उस के शिष्यों में जम्-द्वय-वस् (१३०८-१४४९ ई०) ने १४१६ ई० में ऽत्रस्-सुपुङ् (डे-पुङ् = धान्यकटक) के महाविहार की स्थापना की । शाक्य-ये-शेस् (जन्म १३८३ ई०) ने १४१९ ई० में से-र महाविहार की स्थापना की । इसी वर्ष चोह-स-प को गन्दन् में मृत्यु हुई । पीछे उस के शिष्य (प्रथम दलाई लामा) द्वा-ल-वन्-मुष

(१३९१-१४०४ ई०) ने १४४७ ई० में ब्क-शिसू-ल्हुन्-पो (दशोल्हुन्पो) महाविहार स्थापित किया, और (स्मद्) शेस्-रब्-द्सङ् (१३९५-१४५७ ई०) ने खम्स् प्रदेश में छप्-म्दो (१४३७) के महाविहार की स्थापना की ।

चोङ्ख-प ने जहाँ शास्त्रों के अध्ययन के लिए इतना किया, वहाँ उसने भिक्षु-नियमोंके प्रचार के लिए कम काम नहीं किया । इसो काम के लिए तो इस के अनुयायी द्गो-लुग्सू-प (भिक्षु-नियमानुयायी) कहलाए । इस ने भिक्षुओं के प्रधान ब्रह्मों के लिए पीला रंग पसंद किया, और विशेष श्रवसरों पर पहनी जाने वाली टोपियों का रंग भी पीला रखवा, जिस से इस के अनुयायी पीली-टोपीवाले लामा कहे जाते हैं । अवतारों की महामारी से प्रस्त भोट देश में उत्तराधिकारी चुनने में उस ने योग्य शिष्य का नियम बनाया, और आज तक चोङ्ख-प की गद्दी पर उस का अवतार नही, उस की परंपरा का योग्य पुरुष बैठता है, जिसे कि द्गो-ल्हुन्-खि-प (गन्दन का गद्दी-नशीन) कहते हैं । तो भी उस के अनुयायियों ने उस के अन्य मुख्य शिष्यों के उत्तराधिकार के लिए फिर अवतार का ख्याल रखना शुरू किया; और आज द्गो-लुग्सू-संप्रदाय में अवतारी लामों की संख्या सब से अधिक है ।

चोङ्ख-प का शिष्य मूलत् गुप् (१३८५-१४३८ ई०)—जो पीछे द्गो-ल्हुन् का तीसरा संघराज हुआ—उस के सभी शिष्यों में महाविद्वान् था । इस ने अनेक ग्रंथ लिखे, और अपने गुरु के काम को आगे बढ़ाया ।

पंडित वनरत्न (१३८४-१४६८ ई०) । पंडित वनरत्न अंतिम भारतीय बौद्ध भिक्षु थे, जिन्होंने ने भोट में जा कर अनुवाद और धर्म-प्रचार का काम किया । इन का जन्म पूर्वदेश (बंगाल ?) के एक राजवंश में हुआ था । इन के गुरु का नाम बुद्धघोष था । बीस वर्ष की अवस्था में यह सिंहल चले गए; और यहाँ आचार्य धर्मकीर्ति^१ की शिष्यता में भिक्षु हुए । छ वर्षों तक वहीं अध्ययन करते रहे । फिर श्री धान्यकटक होते हुए मगध देश में आए । वहाँ हरिहर पंडित के पास 'कलाप' व्याकरण पढ़ी । फिर कई जगह विचरते हुए नेपाल पहुँचे । वहाँ

^१ शायद 'निकायसंग्रह' के कर्ता प्रसिद्ध राजगुरु धर्मकीर्ति ।

पंडित शीलनागर^१ के पास कुछ अध्ययन कर १४५३ ई० में भोट देश आए। ल्हामा और यर्-लुङ्ग में कितने ही समय तक रह कर, इन्होंने ने कुछ तार्त्रिक ग्रंथों के अनुवाद में सहायता की। फिर नेपाल लौट कर शांतिपुरी विहार में ठहरे। दूसरी बार राजा (सि-सु) रप्-वर्त्तन के निमंत्रण पर फिर भोट देश आए। भोटराज प्रग्-प-ऽच्युङ्-गन्स् के समय में राजधानी चेंम्-थङ् में पहुँचे। कितने ही समय रह कर फिर नेपाल लौट गए, और वहाँ १४६८ ई० में इन का देहांत हुआ। इन के द्वारा अनुवादित ग्रंथों में मिद्धों के कुछ दोहे और गीत भी हैं। (ऽगोम्-यिद्-बुम्-च) गशान्-नुदपल् (जन्म १३९२ ई०), (सूतग्) शेस्-रब्-ग्नि-छेन् (जन्म १४०५ ई०) और शेम्-रब्-ग्मल् (१४२३ ई०) इन के सहायक लो-च-य थे।

(श-नु) धर्मपालभद्र (जन्म १५२७ ई०)। यही अंतिम विद्वान् लो-च-य थे। यह बु-स्तोन् के प्रसिद्ध श-लु-विहार के भिक्षु थे। इन्होंने 'अभि धर्मकोश-टीका' (स्थिरमति), 'ईश्वरकृत्स्वनिराकृति' (नागार्जुन), 'मंजुश्री-शब्दलक्षण' (भन्वकीर्ति) आदि ग्रंथों के अनुवाद किए। इन से पूर्व इसी श-लु विहार के दूसरे विद्वान् लो-च-य ग्नि-छेन् ब्सङ् (१४८९-१५६३ ई०) ने भी कुछ ग्रंथों के अनुवाद किए थे।

लामा तारानाथ (जन्म १३७५ ई०)। असलो नाम ग्यल्-रङ्-प कुन्-दुगऽ-स्विङ्-पो था। यद्यपि इन का अध्ययन बु-स्तोन् या चोङ्-र-प की भाँति गंभीर न था, तो भी यह बहुश्रुत थे। इन्होंने ने बहुत सी पुस्तकें लिखीं, जिन में भारत में बौद्धधर्म के इतिहास विषय की भी एक है। सर्वप्रथम इसी इतिहास का एक युरोपीय भाषा में अनुवाद होने से तारानाथ का नाम बहुत प्रसिद्ध है। इन के अनुवादित ग्रंथों में अनुभूतिस्वरूपाचार्य का 'सारस्वत' भी है, जिस का इन्होंने ने कुरुक्षेत्र के पंडित कृष्णभद्र की सहायता से अनुवाद किया था।

पंद्रहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध और सोलहवीं शताब्दी भोट देश में भिन्न भिन्न मठों की प्रतिद्वंद्विता का समय था। यह प्रतिद्वंद्विता सशस्त्र प्रतिद्वंद्विता

^१ ऽगु-प-यग्-बुकर-पो (जन्म १५२७ ई०) — 'छोत्-ऽच्युङ्' पृष्ठ १५५ क।

की। १४३५ ई० में फग-मुच् मठ वालों ने ग्चङ् प्रदेश को, रिन्-सुपुङ् वालों के हाथ से दौन लिया। १४८० ई० में श्व-द्मर् लामा (छोस्-भगम्-ये-शेस्—मृत्यु १५३४ ई० ?) ने ग्चङ् की सेना लेकर द्बुस-प्रदेश पर चढ़ाई की। १४९८ ई० में रिन्-छेन्-सुपुङ्-पो ने ग्चङ् की सेना लेकर सनेडु-जॉङ् और सूप्यिद्-शाङ् पर अधिकार कर लिया। इसी वर्ष ग्सङ्-फु और सुक्-म लामों ने वार्षिक धर्म-संमेलन के समय स-सक्य-प और-ऽब्रस् सुपुङ् के भिक्षुओं को अपमानित किया। १५१८ ई० तक—जब तक कि ग्चङ् की शक्ति क्षीण न हो गई—ऽब्रस्-सुपुङ् और से-र के भिक्षु वार्षिक पूजा (सुमोन्-लम् छेन्-पो) में अपना स्थान प्राप्त न कर सके। १५७५ ई० में रिन्-सुपुङ् (ग्चङ्) ने फिर द्बुस् में आ कर लूटमार की। १६०४ ई० में सुक्-म सेना ने सक्य-शोद् दुर्ग नष्ट कर दिया। १६१० ई० में फिर ग्चङ्-सेना ने द्बुस् पर चढ़ाई की। १६१२ ई० में सुक्-म महंत राजा सारे ग्चङ् का शासक बन बैठा। १६१८ ई० में ग्चङ्-सेना ने द्बुस् पर चढ़ाई कर ऽब्रस्-सुपुङ् विश्वविद्यालय के हजारों भिक्षुओं को मार डाला।

ऊपर के वर्णन से मालूम होगा, कि उस समय भोट देश के मठ, विद्वानों और विरागियों के एकांत-चिंतन के स्थान न हो कर सैनिक अखाड़े बन गए थे। वस्तुतः सोलहवीं, सत्रहवीं शताब्दियों में यह बात भारत और युरोप पर भी ऐसै ही घटती है। भारत में भी इस समय संन्यासियों और वैरागियों के अखाड़े और उन के नागे सैनिक ढंग पर संगठित ही न थे, बल्कि कुंभ और मेलों पर इन की आपस में खूब मारकाट होती थी। युरोप में पोप के भिक्षुओं की भी उस समय यही दशा थी। चौद्-ख-प के अनुयायियों की प्रशंसा में यह बात बरुडर कहनी पड़ेगी, कि १६४२ ई० तक—जब कि भोट का राज्य उन्हें मंगोल शिष्यों द्वारा अर्पित किया गया—उन्होंने शासन और राज्य दखल करने का प्रयत्न नहीं किया। वह बराबर धर्म-प्रसार और विद्या-प्रचार में लगे रहे। उन के ऽब्रस्-सुपुङ्, से-र, द्ग-ल्दन्, द्क-शिस्-ल्हुन्-पो, विहारों ने विश्वविद्यालयों का रूप धारण कर लिया था, जिन में कि भोट देश के कोने कोने के ही नहीं, बल्कि सुदूर मंगोलिया और साइबेरिया तक के भिक्षु

अध्ययनार्थ आने लगे थे। इन विरयविद्यालयों के काम को देख कर धर्मा, सारीच सभी जनता दिल खोल कर उन को सहायता कर रही थी। इन के छात्रावास प्रदेश प्रदेश के लिए नियत थे, जिनमें कुछ वृत्तियाँ भी नियत हो गई थी। अर्थ-हीन विद्यार्थी भी इन छात्रावासों में रह कर अच्छी तरह विद्याध्ययन कर सकते थे, और विद्या-समाप्ति पर अपने देश में जा कर अपनी मातृ-संस्था और दूंगे-लुगु-स-संप्रदाय के प्रति प्रेम और आदर का प्रसार करते थे। इतना ही नहीं, दूंगे-लुगु-संप्रदाय के नेताओं ने मंगोलिया में स-गु-वय संवराज के धर्म-प्रचार के कार्य को जारी रखा। १५७७ ई० में तीसरे दलाई लामा यूसो-नर्म-स-र्य-म-दो धर्म-प्रचारार्थ स्वयं मंगोलिया गए। और मंगोल-सर्दार अल्-तन्-हान् ने (१५७८ ई० में) उन का स्वागत किया। इस समय तक दूंगे-लुगु-स-प विरयविद्यालयों के कितने ही मंगोल स्नातक अपने देश में फैल चुके थे। दूसरे वर्ष दलाई लामा ने वहाँ थे-गु-द्वे-न्-दो-न्-ड्योर-गालिड् की स्थापना की। इस यात्रा में उन्होंने थम्-दो, ग्यम-ग्यम आदि के महाविहारों का निरीक्षण किया, और कुछ नए विहार स्थापित किए। १५८८ ई० में तृतीय दलाई लामा का देहांत हो गया।

चतुर्थ दलाई लामा योन्-नन्-र्य-म-दो, १५८९ ई० में, मंगोल-वंश में ही पैदा हुआ। इन यात्रों ने मंगोल-जाति का दूंगे-लुगु-स-प संप्रदाय से घनिष्ठ संबंध स्थापित कर दिया। चलो बजह हुई कि जब भोट के राज्यलोलुप मठों ने दूंगे-लुगु-स-प का प्रभाव को घटने देखा उन में भी छेड़खानी शुरू की, तो मंगोल धीरों ने उन की रक्षा के लिए अपना रक्त देना निश्चय कर लिया। १६१८ ई० में गुब्-मेना का ड्यस-सुपुड् के हत्तारों भिक्षुओं को जान से मारना, मंगोलों के लिए असह्य हो गया। इस खबर के पाने हो सारे मंगोलिया में गुब्-के मठवारियों के खिलाफ क्रोध का समुद्र उमड़ पड़ा। उस समय तक मंगोल-वीर गु-श्री-स्वान् (१५८२-१६५४ ई०) की कीर्ति सारे मंगोलिया में फैल चुकी थी। उस ने मंगोल योद्धाओं की एक बड़ी सेना तैयार कर मध्य-तिब्बत की ओर कूच कर दिया। गुब्-वालों को मालूम होने पर, वह भी उन से लड़ने के लिए आगे बढ़े। १६२० ई० में र्य-द-ध-ग-ड् में दोनों

सेनाओं को मुठभेड़ हुई। बहुत से भोटिया सैनिक मारे गए, किंतु उस वर्ष कोई आखिरी फ़ैसला नहीं हुआ। दूसरे वर्ष (१६२९ ई० में) फिर वहाँ युद्ध हुआ, और ग्चङ्ग् सेना बुरी तरह में पराजित हुई। तो भी कुछ शर्तों के साथ फिर राज्य द्दग्-भग्ग्-प के हाथ में ही रहने दिया गया। लेकिन द्दग्-लुग्ग्-प को दवाने की नीति न बदली। वल्कि द्दग्-लुग्ग्-प के इतने प्रबल पक्षपातियों को देख कर विरोधी और भी तेज हो उठे। १६३७ ई० में इस के लिए द्दग्-लुग्ग्-प विरोधिनी खल्-ख (मंगोल) जाति को गु-श्री-खान् ने को-को-नोर् भील के पास युद्ध करके परास्त किया, और वहाँ से द्दुवुस् प्रदेश (ल्हासा-वाले प्रांत) में आ कर, फिर को-को-नोर लौट गया। १६३९ ई० में चौद्-विरोधी धोन्-धर्मानुयायी खम्स् के शासक वे-रि से युद्ध हुआ। वह राज्य से वंचित कर फ़ैद कर लिया गया, और दूसरे वर्ष उस के अत्याचारों के लिए उसे मृत्यु-दंड दिया गया। ग्चङ्ग् वालों की शरारत अभी कम न हुई थी, इस लिए १६४२ ई० में गु-श्री ने ग्चङ्ग् पर चढ़ाई करके राजा को पकड़ कर, ग्चङ्ग् और कोङ्ग्-पो प्रदेशों को अपने अधिकार में कर लिया। गु-श्री-खान् ने सारे विजित राज्य को पंचम दलाई लामा व्लो-व्सङ्ग्-ग्य-म्द्जो के चरणों में अर्पण किया, और उन की तरफ से प्रबंध के लिए वह भोट का राजा उद्-घोषित हुआ। इस प्रकार भोट में धर्माचार्यों का दृढ़ शासन स्थापित हो कर अब तक चला जा रहा है।

(ग्यल्-व) व्लो-व्सङ्ग्-ग्य-म्द्जो (१६१७-८२ ई०)। चौथा दलाई लामा मंगोल जाति का था, यह पहले कह आए हैं। १६१६ ई० में उस की मृत्यु के बाद, उस का अवतार समझा जानेवाला पाँचवाँ दलाई लामा पैदा हुआ। यह अभी दो वर्ष का ही था, तभी ग्चङ्ग् सेना ने डे-पुङ्ग् के हज़ारों भिक्षुओं को मारा था। छ वर्ष की अवस्था (१६२२ ई०) में यह ऽन्रस्-सुपुङ्ग् (डे-पुङ्ग्) का नायक उद्घोषित हुआ। जब अवतार से सब काम होने वाला है, तब योग्यता और आयु का विचार करने की क्या आवश्यकता? १६३८ ई० में व्क-शिस्-ल्हन्-पो विहार के नायक पण्-छेन (महापंडित) छोस्-क्यि-ग्यल्-म्द्जुन् (१५७०-१६६२ ई०) से इस ने भिक्षु-दीक्षा ग्रहण की।

मंगोल-सर्दार ने चोङ्-र-प के गर्दाभर गन्दुन्-टी-पा को गज्य न प्रदान कर, फ्यों दलाई लामा को दिया, इस का कारण स्पष्ट है। मंगोलिया में धर्म-प्रचार के लिए तीसरा दलाई लामा गया था, और चीया दलाई लामा स्वयं मंगोल था, इस प्रकार यह दलाई लामा से ही अधिक परिचित था। भोटिया लोग दलाई लामा की जगह पर ग्यल्-च-रिन्-पो-छे (जिन-रत्न) शब्द का प्रयोग करते हैं। दलाई लामा यह मंगोल लोगों का दिया नाम है। मंगोल भाषा में त-ले सागर को कहते हैं। पहिले को छोड़ कर यात्री सभी दलाई लामों के अंत में ग्य-म्द्वा (सागर) शब्द का प्रयोग होता है, इसी लिए मंगोल लोगों ने त-ले-लामा कहना शुरू किया, जिस का ही विगड़ा रूप दलाई लामा है। टशी (चक्र-शिखर) लामा को भोट भाषा में पण्-छेन्-रिन्-पो-छे (महापंडित-रत्न) कहते हैं। पंचम दलाई लामा सुमतिसागर के गुरु पण्-छेन्-छोस्-न्यि-ग्यल्-म्युन् से पूर्व वहाँ अवतार की प्रथा न थी। किंतु पंचम दलाई के गुरु होने में, उन का सम्मान बहुत बढ़ गया; और मृत्यु के बाद उन के लिए भी लोगों ने अवतार की प्रथा रखी कर ली। वर्तमान टशी-लामा (पण्-छेन्)-छोस्-न्यि-ञ्चि-म (धर्मसूर्य) उन के पाँचवें अवतार हैं। पंचम दलाई लामा सुमतिसागर यद्यपि अवतार समझे जाने के कारण उस पद पर पहुँचे थे, तो भी वह बड़े कार्यपटु शासक थे। इन के शासन के समय में ही १६४४ ई० में मिङ्-वंश को हटा कर मंचू-सर्दार गुन्-ति-दि-थे-चुङ् चीन का सम्राट् बना। दूसरे साल १६४५ ई० में दलाई लामा ने पोतला का महाप्रासाद बनवाया। १६५२ ई० में चीन-सम्राट् के निर्मंत्रण पर यह चीन गए; और सम्राट् ने उन्हें ता-इ-श्री की पदवी से विभूषित किया। यह सारी अभ्यर्थना चीन-सम्राट् ने शक्तिशाली मंगोल जाति को अपने पक्ष में करने के लिए की थी; जिन पर दलाई लामा का बहुत अधिक प्रभाव था। १६५४ ई० में गु-थो-खान् के मरने पर, उस का पुत्र त-यन् खान् (१६६० ई०) भोट का राजा बनाया गया। उसके भी मरने पर त-ले-खान्-रत्न भोट का राजा बना।

पंचम दलाई लामा को भी धर्म-प्रचार की लगन थी। वह चीन से लौटते हुए स्वयं इस के लिए बहुत से प्रदेशों में गए। उन्होंने एक होनहार भिक्षु

फुन्-झोग्स्-लहुन्-मुव् को संस्कृत पढ़ने के लिए भारत भेजा। इस ने कुरुक्षेत्र के पंडित गोकुलनाथ मिश्र और पंडित बलभद्र की सहायता से रामचंद्र की पाणिनि-व्याकरण की 'प्रक्रियाकौमुदी' (१६५८ ई०) और 'सारस्वत' का (१६६५ ई०) भोट भाषा में अनुवाद किया। गौतमभारती, ऑंकारभारती और उत्तमगिरि नामक रमते साधुओं की सहायता से (१६६४ ई० में) इस ने एक वैद्यकग्रंथ का भी अनुवाद किया। यही भोट का अंतिम अनुवादक था। १६८२ ई० में पाँचवें त-ले-लामा की मृत्यु हुई।

६-वर्तमान-युग (१६६४-)

वृहत्-द्वयङ् स्-ग्य-म्हो (१६८३-१७०५ ई०) । पंचम दलाई को मृत्यु के बाद ब्रह्मघोष-सागर उस का अवतार समझा गया। यह बड़ी ही रेंगीली तबियत का आदमी था। वस्तुतः यह भिक्षु बनने के लिए नहीं पैदा हुआ था। लेकिन क्या करे ? १७०२ ई० में इस ने भिक्षुव्रत तोड़ दिया। लोगों में तहलका मच गया। और इस के फलस्वरूप ल्ह-व्सङ् ने सरकारी सेना को परास्त कर १७०५ ई० में अपने को भोट का राजा उद्घोषित किया। हालत और भी खराब हुई होती, किंतु जिस वक्त छठौं दलाई ब्रह्मघोष-सागर चीन जा रहा था, रास्ते में कोकोनोर भौल के पास उस की मृत्यु हो गई। इधर एक दूसरे ही व्यक्ति पद्-दुर्-ञ्जिन्-ये-शेस्-ग्य-म्हो (पुंडरीकधर ज्ञान-सागर) को पाँचवे दलाई लामा का असली अवतार बनाने का उपक्रम हो चुका था, किंतु ब्रह्मघोष के मर जाने से इस की जरूरत न रही। १७०८ ई० में स्कल्-व्सङ्-ग्य-म्हो पैदा हुए, जो छठे दलाई के अवतार माने गए।

ल्ह-व्सङ् के स्वतंत्र राजा बन जाने की सूचना, जब मंगोलिया में पहुँची, तो वहाँ फिर तैयारी होने लगी, और १७१७ ई० में छुङ्-गर् (मंगोलों की घाई शाखा की) सेना भोट की तरफ रवाना हुई। एक प्रचंड तूफान की भाँति, इस के रास्ते में जो कोई विरोधी आया, उस का इस ने सत्यानारा किया। ल्हासा के उत्तर तरफ के मैदान में ल्ह-व्सङ् ने इस का सामना किया, और लड़ाई में काम आया। चिङ्-म-लामों ने ल्ह-व्सङ् का पक्ष

लिया था, इस लिए छुद्-गर् मेना ने उन के मटों को देङ्-टेंद् कर जलाया, और नष्ट किया। उन के र्गम्-ग्यल्-ग्लिद्, र्श-ज-भग् और सग्मिन्-प्रोल्-ग्लिद् मठ लूट लिए गए। छुद्-गर् के प्रलयकारी कृत्य के विद्व-स्वरूप, आज भी भोट देश में सैकड़ों मंढहर जगह जगह स्पष्ट दिखाई देने हैं। इस प्रकार मंगोलों की सहायता से फिर दलाई लामा को राज्य-शक्ति प्राप्त हुई। सातवें दलाई लामा म्कल्-ध्म्द्-ग्य-मछो (भद्रसागर) चढ़े ही विरामी पुरुष थे। ये राज्य-कार्य की अपेक्षा ज्ञान-ध्यान में अपना सारा समय लगाने थे। इन के काल में १७२७ ई० में एक बार फिर कुछ मंत्रियों ने धराधन की। उस समय (फो-ल-धे-जे) घ्सोद्-नम्-म्तोव्-ग्यम्—जिसे राजा मि-द्ववद् भी कहते हैं—ने म्हड-रिस् और ग्ग्द् की मेनाओं की सहायता में उन्हें परास्त कर दिया। इस मेवा के लिए मि-द्ववद् १७२८ ई० में भोट का उपराज बनाया गया। इसी मि-द्ववद् ने सर्वप्रथम स्क्-ङ्ग्युर और स्तन्-ङ्ग्युर दोनों महान् ग्रंथ-संग्रहों को लकड़ी पर मुद्रवा कर छापा बनवाया, और उसे स्नर्-थड्-विहार में रक्खा। इस मशहूर छापे के छपे मिलने ही कन्-जुर, तन्-जुर आज दुनिया के पुस्तकालयों में पाए जाते हैं।

सातवें दलाई के समय में रोमन-कैथोलिक साधु कैपुचिन फादर्स^१ ल्हासा में गए, और १७०८ ई० तक ईसाई-धर्म का प्रचार करते रहे। इन से पहले १६२६ ई० में पोतुगोञ्ज जेसुइद् पाद्री अत्रेदा ने तिब्बत में प्रवेश किया था, किन्तु वह ल्हासा या च्क-शिस्-ल्हन्-पो तक नहीं पहुँच सका था।

आठवें दलाई लामा के समय में कोई प्रसिद्ध घटना नहीं हुई। नवें (११ वर्ष) दसवें (२३ वर्ष), ग्यारहवें (१७ वर्ष), और बारहवें (२० वर्ष) दलाई लामा बहुत थोड़ी ही थोड़ी उम्र में मर गए। लोगों का कहना है; कि प्रबंधकों ने अधिकार हाथ से न जाने देने के लिए, उन्हें खतम कर दिया। इस के बाद वर्तमान तेरहवें दलाई लामा धुव्-मूतन्-ग्य-म्छो (मुनिशासनसागर जन्म १८७६ ई०) ही दीर्घजीवी हुए। अभी पिछले महाने में ही इन की मृत्यु का

^१ Capuchin Fathers

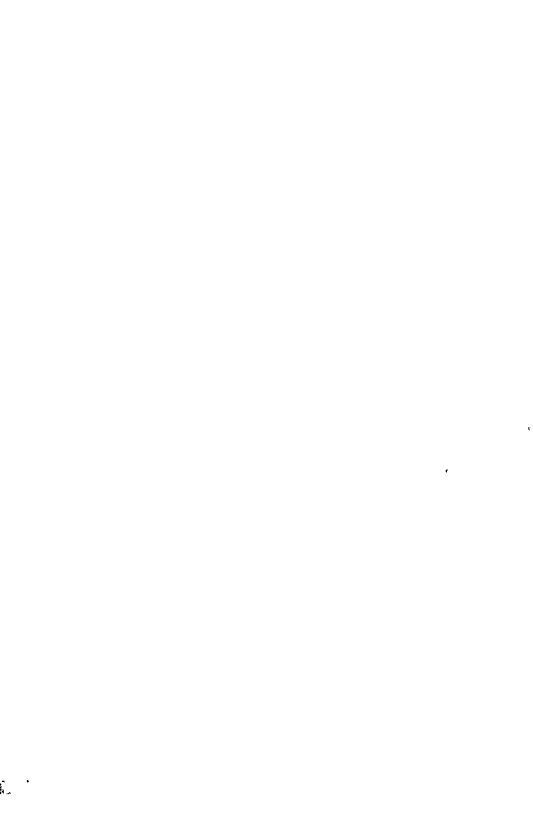
समाचार प्राप्त हुआ है ।

१७७९ ई० में तीसरे टशी लामा दुपलू-लदन्-ये-शेस् (ज-१७४० ई०) चीन-सम्राट् के निमंत्रण पर पेकिन् गए थे; वहाँ इन का बड़ा स्वागत हुआ था, किंतु वहाँ चेचक से इन का देहांत हो गया ।

१८४० ई० में कुछ रोमन कैथोलिक पादरी ल्हासा में दो ठाई मास रहे थे ।

१९०४ ई० में लार्ड कार्जन ने कुछ व्यापारिक शर्तों को मनवाने तथा रूस के प्रभाव को भोट में न बढ़ने देने के लिए सशस्त्र मुहिम भेजी । ल्हासा अंग्रेजों के हाथ में आ गया, किंतु पीछे रूसों और अंग्रेजों सरकारों में समझौता हो गया, जिस से तिब्बत फिर पूर्ववत् रहने दिया गया । बीच में चीन और तिब्बत में मतभेद हो जाने से दलाई लामा को भारत चला आना पड़ा था; किंतु १९१२ ई० में चीन की राज्य-क्रांति के समय मौका मिल गया, और भोट सैनिकों ने चीनी अधिकारियों को भोट से निकाल बाहर किया । दलाई लामा फिर तिब्बत लौट गए थे ।

पाँचवें दलाई लामा के बाद धार्मिक क्षेत्र में भोट ने कोई विशेष कार्य न किया । डे-पुङ्, से-र आदि बड़े बड़े दूंगे-लुगूस्-प विहार अब भी बड़ी बड़ी शिक्षण-संस्थायें हैं, और कितने ही काम पूर्ववत् चले जाते हैं, तो भी धार्मिकक्षेत्र में नवजीवन की बहुत कमी है ।



परिशिष्ट

१—भोटदेशीय संवत्सर-चक्र (स्व्-ऽव्युङ्) का आरंभ^१

स्व्-ऽव्युङ्	ईस्वी सन्
१	१०२७
२	१०८७
३	११४७
४	१२०७
५	१२६७
६	१३२७
७	१३८७
८	१४४७
९	१५०७
१०	१५६७
११	१६२७
१२	१६८७
१३	१७४७
१४	१८०७
१५	१८६७
१६	१९२७

^१ आजकल (संवत् १९९०) में सोलहवें स्व्-ऽव्युङ् का—जो कि माघ संवत् १९८३ में आरंभ हुआ था—मातृघाँ जल-(घी) पक्षी वर्ष चल रहा है ।

२- 'भोवदेशीय संवत्सर-चक्र (रन्-डव्युड)'

(डी)	(पुरष)	(डी)	(पुरष)	(डी)	(पुरष)	(डी)	(पुरष)	(डी)	(पुरष)	(डी)	(पुरष)	(डी)	(पुरष)
नाम	नाम	सर्व	अद्य	मेघ	वानर	पक्षी	इशा	शुक्र	सूयक	जो	सूयक	जो	व्याप
अग्नि	भूमि, भू	भूमि	लोह	लोह	जल	जल	हुम	हुम	अग्नि	हुम	अग्नि	हुम	भूमि
(प्रभव)	(विभन)	(शुष्क)	(प्रमोद)	(प्रजापति)	(अंगिरा)	(श्रीमुख)	(भाव)	(युवा)	(धाना)	(इंटर)	(इंटर)	(इंटर)	(वृहथान्य)
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
भूमि	लोह	लोह	जल	जल	हुम	हुम	अग्नि	अग्नि	भूमि	भूमि	भूमि	भूमि	लोह
(प्रमाथी)	(त्रिकम)	(दुप)	(चिरमालु)	(सुमालु)	(तारण)	(पार्थिव)	(व्यय)	(सर्वाजिव)	(सर्वधारी)	(सर्वधारी)	(विरोधी)	(विरोधी)	(निहत)
१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६
लोह	जल	जल	हुम	हुम	अग्नि	अग्नि	भूमि	भूमि	भूमि	लोह	लोह	जल	जल
(खर)	(नन्दन)	(विजय)	(जय)	(समथ)	(दुसुग)	(हेमलय)	(विलय)	(विकारो)	(नर्वरी)	(हुव)	(हुव)	(हुव)	(हुमठव)
२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२	३३	३४	३५	३६	३७	३८
जल	हुम	हुम	अग्नि	अग्नि	भूमि	भूमि	लोह	लोह	जल	जल	जल	हुम	हुम
(सोमन)	(कोपी)	(विश्रवातु)	(परानव)	(दुवग)	(कोलक)	(सौम्य)	(साधारण)	(विशेषकृत्)	(परिधावी)	(प्रमादी)	(प्रमादी)	(आनंद)	(आनंद)
३७	३८	३९	४०	४१	४२	४३	४४	४५	४६	४७	४८	४९	५०
हुम	अग्नि	भूमि	भूमि	भूमि	लोह	लोह	जल	जल	हुम	हुम	हुम	अग्नि	अग्नि
(रासर)	(नल)	(पिगल)	(कालमुक)	(सिद्धार्थ)	(रोद)	(दुर्मति)	(दुन्दुभि)	(रश्मिदेवगारी)	(रक्षाशी)	(कोपन)	(कोपन)	(सप)	(सप)
५१	५२	५३	५४	५५	५६	५७	५८	५९	६०	६१	६२	६३	६४

संवत्सर का नाम यत्नासे में (डी) शरा, (पुरष) नाग आदि चारहों नामों को उन के नषि के फाँटकों के साथ जोड़ दिया जाता है, जैसे—अग्नि (डी) शरा, भूमि (पुरष) नाग। (डी) (पुरष) को कमी छोड़ भी दिया जाता है, और कमी कमी भूमि आदि पाँचों नाम भी छोड़ दिए जाते हैं।

कलोद्-रैल्ल- (जन्म १०१९ ई०) गमुं-रुं-म पृष्ठ १६ ख। ० अधिक माल वाले वर्ष और माल, स-स्य-स- (प्राग्-प-र्यल्ल-मछन्, ११४६-१११६ ई०) गृह-रुं, त, पृष्ठ २०३ ख।

३-भोटदेशीय मासों के नाम^१

भोटदेशीय			भारतीय	
संख्या	नाम	ऋतुओं के अनुसार नाम	ऋतु	नाम
१	नाग	अंत	हेमंत	माघ
२	सर्प	आदि	ग्रीष्म	फाल्गुण
३	अश्व	मध्य	"	चैत्र
४	मेघ	अंत	"	वैशाख
५	घानर	आदि	शरद	ज्येष्ठ
६	पक्षी	मध्य	"	भाद्रपद
७	श्वा	अंत	"	श्रावण
८	शूकर	आदि	शिशिर	भाद्रपद
९	सूषक	मध्य	"	आश्विन
१०	वृष	अंत	"	कार्तिक
११	व्याघ्र	आदि	हेमंत	मार्गशीर्ष
१२	शश	मध्य	"	पौष

^१ भोटदेशीय प्रथम मास माघ सुदी प्रतिपद् से आरंभ होता है। माघ-गणना अमावस्यात है, किंतु अधिक मास के एक साथ न पड़ने के कारण भारतीय मासों से मिलान नहीं रहता।



(स्प-३३७) यूयोत्र-उपर (जन्म १०९० ई०)

छोस-विय-युवइ-भ्युग

छोस-मगास्-रिन्-छेन्-इ-पल्-यसङ्

(इक-३-त्रिनि-) मगास्-प-भायोत्र-उ

स्यो-कुर्ग-प (जन्म १०७४ ई०)

रिन्-छेन्-यसोइ-नमस-मगास्

(उ-य्तोत्र) रिन्-छेन्-मुम् (१२९०-१३४४ ई०)

(धमर-य्तोत्र) य्य-मछो-रिन्-छेन्

(चोइ-ल-प) एलो-यसङ्-मगास्-प (१३५७-१४१९ ई०)

१ एलोइ-रं-ल-मु-सुं-सुं च, पृष्ठ ११ क, १२ क ।

२ यही, पृष्ठ १३ क ।

१०-स-सूक्त मठ (स्थापित १०७३ ई०) के संघराज

संख्या	नाम	जन्म	गद्दी	मृत्यु
	१ (ऽखोन्)-दूकोन्-ग्यल्	१०३४ई०	१०७३	११०२
	१ व-रि-लो-च-य		११०२	(११११)
२१	(स-छेन्) कुन्-दूग-ऽ-सूत्रिड्-पो	जल-वानर		भू-ध्यात्र
		१०९२	११११	११५८ ई०
२२	(सलोव्-दूपोन्) व्सोद्-नमस्-च-मो	जल-इवा		जल-ध्यात्र
		११४२	(११५८)	११८२
२३	(जे-व्छुन्) प्रगस्-प-ग्यल्-मूछन्	अग्नि-दास		अग्नि-भूपक
		११४७	(११८२)	१२१६
२४	(स-पण्) कुन्-दूग-ऽ-ग्यल्-मूछन्	जल-ध्यात्र		लोह-दूकर
		११८२	(१२१६)	१२५१
२५	ऽफगस्-प-ग्लो-मोस्-ग्यल्-मूछन्	१२३४	(१२५१)	१२८०
२६	धर्मपालरक्षित	१२६८	१२८०	१२८८
२७	(शर्-व) ऽजम्-दूव्यड्स्-दोन्-ग्यन्	१२७६	१२८८	
२८	दम्-प-व्सोद्-नमस्-ग्यल् मूछन्	१३११	१३४२	

१ 'जर्नेल अन् दि घंगाल एशियाटिक सोसाइटी', (१८८९) में श्री वारधन्-दास का लेख ।

२ स-मूव-धर्-ऽउं, फ, ख । ३ स-मूव-धर्-ऽउं, ग, ट, च, ।

४ वही, छ, ज, त । ५ वही, ध, द, न । ६ वही, प, फ, व ।

११-स-सूक्त-वंशवृक्ष*

(ऽखोन्) इकोन्-ग्यल् (१०७३ ई०)

१-कुन्-द्गऽ-सजिङ्-पो (१०९२-११५८)

२-वसोद्-गंभस्-चे-मो
(११४२-८२)

३-यगस्-य-ग्यल्-मृहन्
(११४७-१२१६ ई०)

इपल्-छेन्-डीद्
(११५०-१२०३)

४-कुन्-द्गऽ-ग्यल्-मृहन्
(११८२-१२५१)

सहस्-छ-वसोद्-ग्यन् (११८४-११३८)

५-ऽफगस्-ग
(१२३४-८०)

फगन् (१२३८-६७)

ये-ऽयुङ् (१२३७-७४)

रिन्-प्रगस्-ग्यन् (१२३७-७)

६-धर्मपालरक्षित (१२६८-८८)

९-कुन्-ब्लो
(१२९९-१३२७)

कुन्-ग्यन् (१३१०-५८)

८-द्गम्-ग
(ज.१३११)

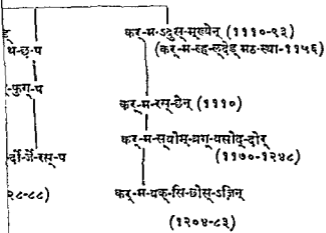
७-ऽजम्-द्वयम्
(ज.१२७)

१०-ब्लो-ग्यन्
(१३३२-५८)

छोस्-ग्यन् (ज.१३३२)

येग्-छेन्-छोस्-ग्यल् (ज.१३४९)

* 'जर्नल अन् दि बंगाल एशियाटिक सोसाइटी' १८८९ और स-सूक्त=वर्क-ऽधुं के भा पर । यहाँ शिष्यक्रम से नहीं बल्कि संतानक्रम से उत्तराधिकार मिलता है । गदी घर से याद पाय, हम लिए घर का एक व्यक्ति भिक्षु धना दिया जाता है, और वही संघराज होता है ।



सेद् यलो-रम्-दवड-व्योन् (गंदि-छड्) म्गोन्-पो-दी-जे
 ६) (११८७-१२४९) (११८९-१२५८)
 र-लुड्) (सम्-ऽगम्) (सतो-ऽगम्)

याके रास्ते पर अवस्थित य-दोङ्-मछो महाम्बरोवर के पास है ।
 र सत्तग् धे-जोड् के भी पूर्व मङ्गुप्र-उपायका में ।

१३- 'कर्-म-संघराज

संख्या	नाम	जन्म	मृत्यु	विरोध
	नारोपा (विक्रम शिला)		१०४० ई०	
	मर्-प-छोस्-किय-धलो-प्रोस् ^१			
	मि-ल-रस्-प ^२	१०४०	११२३	१११० ई० में-मर्-प के पास गया।
	सगम्-पो-(द्वगस्-पो) ^३ व्ह-जें ^४	१०७२	१५५३	
	(कर्-म-) ऽदुस्-ग्-सुम्-मूष्येन्-प ^५	१११०	११९३	
	" रस्-छेन् ^६			
१	" स्योम्-मग्-यसोद्-दोर् ^७	११७०	१२४८	
२	" धक्-सि-छोस्-ऽजिन् ^८	१२०४	१२८३	
३	" रह्-ऽव्युह्-दो-जें	१२८४	१३३९	
४	" रोल्-व-दो-जें	१३४०	१३८३	
५	" दे-व्-गिन्-ग्-शोग्-प	१३८४	१४१५	
६	" म्पोद्-व-दोन-रुद्व	१४१६	१४५३	
७	" छोस्-मग्-स्-मर्-मूछो	१४५४	१५०३	
८	" मि-यस्-वयोह्-दो-जें	१५०७	१५५४	
९	" व्-वह्-फ्युग्-दो-जें	१५५६	१६०१	
१०	" छोस्-द्व्युग्-स्-दो-जें	१६०४	१६७३	

^१ 'जर्नेल अन् दि बंगाल एतिहासिक सोसाइटी' (१८८९) जिल्द ५८ (१)

और फ्लोह्-व्ह-ग्-सु-ऽर्-प, प, उठ ८ क के आधार पर ।

^२ द्वगम्-पो मठ ११२१ ई० में स्थापित किया ।

^३ इस ने निम्न मठों को स्थापित किया—ग्-सु-मूर्-रह-रुह् (११५४ ई०), मूर्-रु-कु (११५९ ई०), मग्-पो-गन्त-मह् (११६४ ई०), ऽदोद्-मूष्येन्-ग् (११६९ ई०), कर्-म-रह-रुह् (११८५ ई०) । ११३९ ई० में सगम्-पो के पास गया ।

^४ यहाँ तक निम्न उपाधिकारी होता रहा, पीछे भवतारी उपाधिकारी



मालिक द्वाऱ-ल्दन्-संघराज

सदी	मृत्यु
	१४१९ ई०
१४१९	(१४३१)
१४३१	१४३८
	१४६२
१४६२	१४७३
१४७२	१४७८
	१४९१
१४९०	१४९२
	१४९८
१५००	१५११
१५१७	१५४०
	१५२९
१५२९	१५५४
१५३५	१५३९
१५३९	१५५३
	१५४०
५४८	१५५०
५४८	१५६७
	१५५३
	१५६८

में चौपासो लिखों को परंपरा ।

- * दीवकर से चौहल-प तक देवो लिख्यत में चौपासो लिखों को परंपरा ।
- † 'कलौह-र-सु-उं सु, पृष्ठ ८० क ।
- ‡ 'जनेल कव् दि बंगाल पुनिघाटिक सोसाइटी', डिब्ब ५८, भाग १ ।
- § श्री शरद्वदास, डॉ० जार्ज कुम और सर चार्ल्स वेरु ने सच् मिलने में १ वर्ष कथ रफगा है ।

०१ र से लिय गय है ।

१५-चौड़-ख-प की गद्दी के मालिक द्वाऽत्तदन्-संघराज

नाम	जन्म	गद्दी	मृत्यु
चौड़-ख-प			१४१९ ई०
धर्म रिन्-छेन्		१४१९	(१४३१)
मखस् सुभ-जें		१४३१	१४३८
यलो-प्रोस्-छोस्-स्वपोद् (य-सो) छोम्-ग्यन्		१४६२	१४७३
यलो-यर्त्तन्		१४७२	१४७८
सम्भोन्-लम्-दूपल्			१४९१
यलो-न्सुट्-जि-म	१४३९	१४९०	१४९२
ये-न्सुट्			१४९८
ऽद्व-न्सुतोन्		१५००	१५११
रिन्-डोद्-प	१४५३	१५१७ ?	१५४०
धोम्-रय्-हेगम्-यलो	१४५०		१५२९
यसोद्-प्रगम्-य	४१७८	१५२९	१५५४
छोस्-स्वपोद्-य्य-गछो	१४७३	१५३५	१५३९
(मि-गम्) दोर्-यम्	१४९१	१५३९	१५५३
छोस्-यधोम्	१४५३		१५४०
* ग्यन्-यम्	१४९७		
धग्-द्वरट्-छोस्-प्रगम्	१५०१	१५४८	१५५०
(डोल्-दग्ऽ) द्वा-हेगम्-दूपल्	१५०५	१५५८	१५६७
छोस्-प्रगम्-यम्	१४९३		१५५९
द्वो-ऽनुन्-यम्तन्-द्व	१४९३	१५६४	१५६८

* यह नाम क्लोद्-द्वेन् (जन्म १७१९ ई०) द्वा-द्वेन् नु शब्द ७१ म से लिट् गय् है ।
पगरी राय बहादुर नारायणदास के लेख से ।

नाम	जन्म	मदो
छे-तेन्-गर्भ-मद्यो	१५२०	१५६८
व्यमस्-प-गर्भ-मद्यो	१५१६	१५७५
दूपल्-स्योर-गर्भ-मद्यो	१५२६	१५८२
दम्-टोस्-(वूपल्-सवर)	१५२३	१५८९
गो-सुन्-गर्भ-मद्यो	१५३२	
सह्-गर्भ-मद्यो	१५४०	१५९६
हर-गर्भ-मद्यो		१६०३
टोम्-जेर-गर्भ-मद्यो	१५४६	१६०७
(सतर्-गर्भ) व्लो-गर्भ-मद्यो	१५४६	१६१५
दम्-टोस्-दूपल्	१५४६	१६१८
(छुल्-विमस्) टोम्-स्योर	१५६१	१६१९
प्रगम्-प-गर्भ-मद्यो	१५५५	१६२३
(डग्) टोम्-विद्य-गर्भ-मद्यो		
दकोन्-मद्यो-गर्भ-मद्यो	१५७३	१६२६
(कोट-पो) प्रसतन्-सिन्-लेगस्-गर्भ-मद्यो		१६३७
जेन्-दुगे		१६३७
(द्रगस्-पो) प्रसतन्-प-गर्भ-मद्यो		१६३३
दकोन्-मद्यो-गर्भ-मद्यो		१६४८
दूपल्-लदन्-गर्भ-मद्यो		१६५४
व्लो-व्मड-गर्भ-मद्यो		१६६२
व्लो-व्मड-दीन्-गर्भ-मद्यो	१६०२	१६६८
१ व्लो-व्मड-गर्भ-मद्यो		
व्यमस्-प-गर्भ-मद्यो	१६१८	१६७५
व्लो-प्रसद-गर्भ-मद्यो		
कल्ल-सुम्-गर्भ-मद्यो		१६८२
१ व्लो-प्रोस्-गर्भ-मद्यो	१६३५	१६८५
(वी-नस्) स छुल्-विमस्-दर-गर्भ-मद्यो		१६८५

१ यह नाम कलौ

५१३/११५

११८

११८

नाम	जन्म	गद्दी	मृत्यु
(यस्मन्-बलो) ब्यिन्-प-भ्यं-मद्यो		१६९२	
(यो-तस्) छुल्-द्वर्		१६९५	
दोन्-योद्-भ्यं-मद्यो		१७०१	
१ द्वपल्-ऽव्योर्-भ्यल्-मृद्धन्			
१ दोन्-भुय्-भ्यं-मद्यो			
१ (व्य-मल्) द्वगे-ऽदुन्-फुन्-छोग्स्			
१ दग्-द्ववल्-मृछोग्-लदन्			



१ यह नाम ब्रह्मोद्-भ्यं (जन्म १०१९ ई०) ग्मं-ऽर्षुं च् एट ३१ व्ष से लिपि गण है ।
 यानी ११५ ब्रह्मोद्-भ्यं के लेख में ।

१६-बौद्धविद्वान् श्रौर उनके आश्रयदाता आदि

समय	आश्रयदाता या प्रधान व्यक्ति	भारतीय पंडित	लोच्-व (दुभाषिया) या प्रधान धार्मिक नेता
आरंभ-युग (५८०-७६३)			
५७०-६३८	स्रोङ्-चुन्-स्रगम्-पो	देवविद्यासिंह शंकर (प्राज्ञ) शीलमंजु (नेपाली)	थोन्-मि भ-मुडि-तु धर्मकोष (ह्यद्) महादेव (व्ह-लुद्) दो-जे-दुपल् (य्लन्-क) मूलकोष (ङ्ग्) ज्ञानकुमार
६७०-७४२	(लि) ख्दे-गुचुर्-वर्तन्		
मांतरक्षित-युग (७६३-९८२)			
७४२-८५	(लि) स्रोङ्-ग्दे-वर्चन्	अर्नत शांतरक्षित पद्मयंमव वमलशील सुरेन्द्राकर प्रभ शीलधर्म (ली) धर्मकीर्ति विमलमित्र ज्ञानगर्भ	सद्-शि (चीनी) मे (चीनी) गो (चीनी) दृपल्-मिय-सेट्ठे ये-शेर्-व्वद्-पो (ली) ज्ञानकुमार (स्न-नम्) दो-जे-युडुद्-उ जोव्स् नेम्-भुख्-सुव्योद् (ल्वे) ज्ञानसिद्धि (ह्यद्) महापान (चिम्) शाक्यप्रभ (प-गोर्) वैरीचनरक्षित

समय

आश्रयदाता या प्रधान
व्यक्ति

भारतीय पंडित

लो-च-व (हुभापिया)
या प्रधान धार्मिक नेता

७८७-८१७

(वि) छ्दे-(स्रोद्)-
य्चन्-पो

(अपरांतक) जिनमित्र

सुरेंद्रयोधि

शीलेंद्रयोधि

दानशील

योधिमित्र

विद्याकरमिह (० प्रभ)

मंजुश्रीवर्म

विद्याकरसिद्ध

धर्मश्रीप्रभ

सर्वज्ञदेव

धर्माकर

शाक्यमिह

सर्वज्ञ देव

विद्याकरप्रभ

शुद्धगुण्य

शांतिगर्भ

(कदमीरी) जिनमित्र

(थङ्-ति) जयरक्षित

कुलुडि-द्ववद्-पो

(शुद्-पु) श्रीसिंह

(यं) मंजुश्री

(च्द) देवेंद्र

(खद्) कुमुदिक

(ऽखोन्) नागेंद्ररक्षित

लेग्स्-पडि-य्लो-भोस्

(र्म-आचार्य) रिन्-छेन्-

म्छोग्

(यन्-दे) र्म-पर्-मि-तांग्

ग्लद्-क-तन्

(व्य) वि-ग्जिग्स्

(र्थ) विय-शेर्

सद्-शि

(च्द) लेग्स्-मुय्

छोस्-भिय-सन्द्-व

(स्गो) रिन्-छेन्-स्दे

(यन्-दे) दूपल्-य्चेग्स्

(यन्-दे) कुलुडि-द्ववद्-पो

(श्द) र्ग्यल्-यन्-अ-ध्-सद्

(ल्चे) विय-ऽद्ग

देवचंद्र

दूपल्-गिय-रुन्-पो

दूपल्-गिय-द्वय्-यद्-म्

य्लोन्-ति-य्-शेद्

रक्षरक्षित

धर्मशाशील

जयरक्षित

समय आशयदाता या प्रधान भारतीय पंडित लो-च-य (दुभाषिया)
व्यक्ति या प्रधान धार्मिक नेता

८१७-८४१ (सि) रल्-प चन् शाक्यसेन रत्नेन्द्रशील
ज्ञानसिद्ध द्यो-वडि-द्वपल्
मुनिवर्म (यन्-दे) योन्-तन्-द्वपल्
शाक्यप्रभ (स्न-नम्) ये-शेम्-स्दे
ज्ञानगर्भ (चोग्-रो) क्लुडि-र्यल्-म्हन्
विशुद्धसिंह (गोस्) होस्-मुय्
प्रज्ञावर्म धर्मालोक
द्वल्-द्ववद्-पो
ये-शेम्-द्वपल्
(यन् दे) नैम्-म्हवऽ
ये-शेल्-स्वम्-गुम्
तोन्-डजिन्
(शद्) ये-शेल्
ये-शेम्-स्मिद्-पो
ये-शेल्-म्दे
देवेन्द्र

८४१-४२ (गल्ह) दर-म कुमाररक्षित
(रह-लुद्) द्वपल्-दो-जे
तिद्-डे-डजिन-धसुद्-पो
(र्म) रिन्-हेन्-म्होग्
(चद्) रव्-गसल्
(ग्यो) द्यो-ड्युद्
(स्तोद्-लुद्-स्मर्) शाक्यमुनि
व्लिय-र-ज्येद्-प

दीपंकर-युग (१०४२-११०२)

१००० ये-शेम्-डोद् श्रद्धास्वर्म रिन्-हेन्-द्वसल् पो (१५८-१०५५)
जनार्दन लेग्म्-पडि-शेम्-रव्
पद्माकशुस (० धर्म) द्वपल्-ड्योर्
सुभाषित (सिद्-मो-डे) द्यव्-सुम्-मेद्-यो
दुद्धधीशान्ति द्यो-वडि-वलो-धोस्

समय	आश्रयदाता या प्रधान व्यक्ति	भारतीय पंडित	लो-च-त्र (दुभाषिया) या प्रधान धार्मिक नेता
		सुन्दरपाल	(म्मि-चो) म्-वद्-ओद्-सेर् (१०२७) ल
		कमलगुप्त	(म्प्रो) शैस्-रव्-अग्स्
		वरुणा (ज्ञान) श्रीभद्र	शाक्य-ब्लो-ओस्
		सोमनाथ (कश्मीरी) (१०२७)	(लोग्-सक्य) शैस्-रव्-पचेंग्स्
		धर्मपाल	(मल-नयो) ब्लो-ओस्-अग्स्-प
		कनकश्रीमित्र	ग्शोन्-अग्स्
		प्रज्ञापाल	द्गो-वद्-लेग्स्-प
		कुमारकलदा	कुल्-सिमस्-योन्-तन्
		धर्मश्रीवर्म	(ओग्-मि) शाक्य-ये-शेस् (मृत्यु १०७३)
		प्रेतक	
		रघुतिज्ञानकीर्ति	
		सूक्ष्मदीर्घ	
		पद्मरुचि	
		गंगाधर	
		धर्मश्रीभद्र	
		गयाधर	
	बु-लुदे (राजा)	सुभाषित	
	ओद्-लुदे (राजा)	मुनयथी	(हन्) दर्-म-अग्स्
		मति	(दह्-द्वड) डकग्-पडि-शेस्-रव्
		आरण्यक (कश्मीरी)	
		तेजोदेव	
		परिहितभद्र	
१०४२	व्यद्-युयोद्	दीर्घकरश्रीशान	रिन्-छेन्-भूद्-पो
		महाजन	ग्शोन्-नु-अओग्
		कुमारकलदा	(नग्-छो) इल्-सिमस्-न्येन्-व
		हरणपंडित	(से-र्य) व्सोद्-नमस्-न्येन्
		शांतिभद्र (नेपाली)	(र्य-) प्शोन्-अमुस्-मेद्-गे (मृत्यु १०४१)

सुभूतिघोष

द्वन्द्व-लदे (राजा)	भव्यराज (कश्मीरी)	(डोग्) द्वाल्-लदन्-शेस्-रव् (१०५९-११०८)
यू-शिस्-लदे- द्वन्द्व-पयुग् (राजा)	तिलकलश	(मर्-प) छोम्-विय-द्वन्द्व-पयुग्- प्रगुस्
	स्थिरपाल	(ऽद्रोग्-मि) शाक्य-ये-शेस्
	कनकवर्म (कश्मीरी)	रिन्-छेन्-द्वसुङ्-पो (९५८-१०५५)
	जयानंत	(श-म) सेट्-नो-र्यल्
	अतुलदास	(क्लोग्-म्यज्) ग्नाोन्-नु-ऽवर
	सुमतिकीर्ति	(स्म-व्-सुम्पुर) दट्-पडि-शेस्-रव्
	अमरचंद्र	(मर्-प) छोम्-निय-वलो-प्रोस्
	कुमारकलश	(प-द्व) नि-म-प्रगुस् (जन्म १०५५)
	धर्मश्रीभद्र	
	बुद्धश्रीशक्ति	
	नाडपाद (नारोपा मृत्यु १०४०)	
	मैत्रीपाद	
	शक्तिभद्र	

स-सूक्ष्म-युग (११०२-१३९६)

११०२-११११

(स-सूक्ष्म) व-रि-
लो-च-व

मंजुश्री

व-रि-लो-च-व

अभयाकरगुप्त (मृत्यु
११२५)

(वन्-दे) शेस्-रव्-द्वपल्

वज्रपाणि (१०६६)

(ग्दन्-ऽखोर) वलो-प्र म्

सुदाकरवर्म

(से-रैद्) ऽखोर-लो-प्रगुस्

दृष्टा

(ग्नुम्) धर्म-प्रगुस्

फ-दग्-प (मृत्यु

(म्पोट्-जो) ग्मल्-व प्रगुस्

१११८)

विमयधंद

छोम्-विय-नोम्-रव्
(योद्-ग-मि-अग्) च-मि
रदम्-व्यम्-प्रगम्
(यत्रो-यो) दोम्-रध-दपल्
(जन्म १०५९)

धोम्-प इगऽ

(मं-वन्) छोम्-उन्

(म्हुर्) ये-शोल्-उन्मुद्-गतम्

(सन्-द-प) हुल्-विमम्-ऽधुर्-
गन्स् (११०६-१०)

(र्ध) दो-ज-प्रगम्

(दप्यल्) कुन्-दग्-ऽदो-जो

(दह-हु) द्यर्-पो

फुर-नु-ऽोद्

(फर्-रि) रिन्-हेन्-मर्-स

(र्ध) छोस्-रय्

(शट्) दोस्-रय्-बल्-म (मृत्यु
११००)

प्रगम्-प-व्यल्-मुद्-न्

११११-५८

(म-ग्रय) कुन्-
दग-ऽनजिद्-पो

अहं-र-देव

महाकावणिक

दुन्वनायमाधि

अमोघरज

समंतधी

११८२-१२१६

(म-ग्रय) प्रगम्-
प-व्यल्-मुद्-न्

संशुधी

अनंतधी (सिंहल)

धर्मधर

कीर्तिचंद्र

जगन्मिप्रानंद

(मित्रपा, ११९८)

लक्ष्मीकर

(मं) लो-च-व (जन्म ११६०)

व्यङ्-मुद्-ऽधुम्

(शट्) लो-च-व (मृत्यु ११७०)

(यर्-लुद्) प्रगम्-प-व्यल्-मुद्-न्

(मुनुयम्) हुल्-विमम्-शोम्-वय्

(शोद्-सतोन्) दो-जो-व्यल्-मुद्-न्

(यो-फु) व्यम्-प-डि-दपल् (जन्म
११७३)

(चल्) छोस्-व्यल्-पो

१२१६-५१

(म-ग्रय) कुन्-
दग-ऽन्यल्-मुद्-न्

कुद्धर्षाज्ञान (१२००)

समय आश्रयदाता या प्रधान भारतीय वंशित लो-च-य (दुभाषिया)
व्यक्ति या प्रधान धार्मिक नेता

	शाक्यश्रीभद्र (११२७-१२२५)	(ब्य-मुल्) लो-च-य (१२०१)
	विभूतिचंद्र (१२०४) (जगतल)	(रोड्-र्ण) नैम-ग्यल्-र्दा-र्जे
	दानशील (१२०४)	(र्व) र्दा-र्जे-द्वपल्
	संघधी (नेपाली, १२०४)	(छग्) द्रम-चोम-ते-डु (११५३-१२१६)
	सुगतश्री (१२०४)	दुल्-खिमस्-ग्यल्-मूछन्
	विनयश्री	दुल्-खिमस्-मेइ-ने
	धर्मधर	(म्पद्) म्रगस्-प-ग्यल्-मूछन्
	रत्नश्री	
	चज्रासनपाद	
	निष्कलंक	
स्वयं ऽफगु-प	सुधनरक्षित	(इव-मर्) सेइ-ग्यल्
	मणिभद्ररक्षित	(य-प्रोग्-ग्यि-मर्-प) छोस्-विय-द्ववड्-पो
	लक्ष्मीश्री (नेपाली)	(टर्) छोस्-र्जे-द्वपल् (मृत्यु १२६५)
	लक्ष्मीकर	देपेंद्र रत्नरक्षित (शोइ-मूतोन्) र्दा-र्जे-ग्यल्-मूछन् मूलो-प्रोम-ते-न-प
१२००-८८	(स-ग्यव) धर्म-पालरक्षित	(स्तग्) शाक्य-वृसद्-पो (जन्म १२६२) (मि-अग्) लो-च-य (मृत्यु १२८२)
१२१०-१३६४	(धु-मूतोन्) रिन्-डेन्-मुष्	(शोइ-द्वकर्) ब्यइ-शुय्-चें-मो-मूलो-मूतेन्-द्वपोन्-पो (१३०३-८०) (जो-नद्) शोइ-ग्यन् (मृत्यु १३६१) छोस्-र्जे-द्वपल् त्रि-स-ग्यल्-मूछन्-द्वपल्-धग्-पो
	कीर्तिचंद्र	
	धर्मश्रीभद्र (?)	
	धर्मधर	
	सुमनश्री (कश्मीर)	

समय	आयुर्वेदशास्त्र पर परीक्षा	भारतीय पंडित	लोचन (दुभाषिण) या प्रधान धार्मिक नेता
		सांगिजधी	(१७५९) बलो-मोग्-पुर्तग (१७५९) टोम्-रिय-बुसुद्-पो (१७-सूनार) रिन्-डेन्-मुष्

प्लेट - १२-५-सुग (१३०६-१६६४)

- | | | | |
|-----------|---|---|------------------------------|
| १३५०-१०६ | (१३-५) बलो-
र-क-मुष्-ब वनरन (१३८४-१४६८) | (१३०६) मिन्-पुम्-धे
(जन्म १३६२)
रु-मोन्-मु-पुष्
(सन्म) मोम्-ब्य-रिन्-डेन्-
(जन्म १४०५)
दोम्-रम्-र्येल् (जन्म १४२६) | |
| १५२०-३६ | (१५-७) धर्मपालभद्र | (१५-७) रिन्-डेन्-पुम्-धे (१४८६
१५६३)
रिन्-डेन्-पुष्-सिम्-पुष्-पुम्-धे
(१५७६)
(सन्म-मुष्) कुन्-पुष् (१५५५) | |
| १५०५ जन्म | (१५-७-५५५) कुन्-
पुष्-सिम्-पुष्-पो
(लामा तारानाथ) | कृष्णभद्र | तारानाथ |
| १६१०-८२ | (दलाईलामा) बलो-
र-क-मुष्-ब-धे ^१ | बलभद्र (कुरक्षेत्र) | कुन्-डोग्-बुन्-मुष् (१६६४) |
- गोकुलनाथमिश्र
कृष्ण (कुरक्षेत्र)
गौतमभारती
ओंकारभारती
उत्तमगिरि

^१ लोचन और पंडित को एक पंक्ति में रखने में काल का ध्यान नहीं रक्खा गया है। कुछ को प्लेट पर चाक्री पंडित स्वयं लिखित से मालूम है।

१७-तिब्बत में भारतीय ग्रंथों के कुछ प्रधान अनुवादक, उनके
सहायक और ग्रंथ

काल	अनुवादक	सहायक, या सम- सामयिक	अनुवादित ग्रंथ	ग्रंथकर्ता
गांतरन्तित-युग (८२३-१०४२)				
५	शांतरक्षित	धर्मालोक	हेतुचक्र	दिङ्-नाग
५	पद्मसंभव	वैरोचन	चन्द्रमंत्रसंग्रह	
		दूपल्-गिय-सेङ्-गे	टाकिनीजिह्वाजालनंत्र	
	विमलमित्र	(चन्-दे) ज्ञानकुमार	चन्द्रसखमायाजालगुह्य- सर्वादशसत्र	
		नम्-मूखऽ-सूक्योङ्	सप्तशतिका प्रज्ञा- पारमिता-टीका	कमलशील
		रिन्-छेन्-सूदे	प्रज्ञापारमिताहृदयटीका	विमलमित्र
	सुरेंद्राकरप्रभ (ली-यामी)	नम्-मूखऽ-सूक्योङ्	प्रतीत्यसमुत्पाद-व्याख्या	धमुचंघु
		शील धर्म (ली) ?		
६१४	ज्ञानगर्भ	नम्-मूखऽ-सूक्योङ्	संघ-परोक्ष	धर्मकीर्ति
	त्रिनमित्र	सुरेंद्रयोधि	दशसाहस्रियांप्रज्ञा- पारमिता	
		प्रज्ञापर्म	दशसाहस्रियांप्रज्ञा- पारमिता	
		दानशील		
		मुनियर्म	सध्यागताऽऽपिहःमुत्तमिर्देश	
		शांसेन्द्रयोधि		

काठ	अनुवादक	सहायक, या सम- सामयिक	अनुवादिन मंत्र	प्रबंधकर्ता
		ज्ञानगर्भ शास्त्रप्रभ शास्त्रमेत धर्मपाल	महाविशेषाचिता- परिवृष्टा-सूत्र	
		ज्ञानमिद मंजुधीवर्म रत्नेन्द्रशील ये-शेम्-सूदे ”	युक्तिपटिका-वृत्ति न्याय-विदु-टीका	चंद्रकीर्ति विनीतदेव
		देवेंद्ररक्षित (लोचुव) (क-व) दूषल्-धुचेगम् जयरक्षित देवचंद्र रत्नरक्षित	मिद्वसार (धर्मक) अभिधर्मकोश त्रिधर्मकसूत्र महाय्युत्पत्ति (८७४)	वसुबंधु
८१४	(सद्) ये-शेम्- सूदे	जिनमित्र	अभिधर्मसमुच्चय	धर्मंग
		सुरेंद्रयोधि शीरेंद्रयोधि प्रज्ञावर्म दानशील मुनिवर्म मंजुधीगर्भ (० वर्म) विजयशील ज्ञानसिद्धि शास्त्रमेत	गयशीर्ष-सूत्र-व्याख्या { मध्यमकालंकार-पंचिका { महायानसंग्रह मध्यमकालंकार शिक्षासमुच्चय श्रामणेरवारिका दशभूमिक-व्याख्यान धर्मसंगीति-सूत्र योधिदिग्निर्देश अष्टसाहस्रिकाप्रज्ञापारमिता	वसुबंधु कमलशील असंग शास्त्ररक्षित शास्त्रिदेव नागार्जुन वसुबंधु
८००	धर्मताशील (लो-च-व)	शास्त्रमेत		
		देवेंद्ररक्षित (लो०) कुमाररक्षित (लो०)		

काल	अनुवादक	सहायक, या सम-सामयिक	अनुवादित ग्रंथ	ग्रंथकर्ता	
(ह-शब्) स्व-मो		शाक्यप्रभ	} प्रज्ञविशेषचिंतापरिपृच्छा		
(क-घ) द्वपल्-		धर्मपाल			
यद्देग्स्		जिनमित्र			
		सुरेंद्रयोधि			} सर्वधर्मसमता-विषयचिंत-
		शीलेंद्रयोधि			
		नर्म-पर-मि-तोग्-प	समाधि-प्रतिकूल	(चीनीभाषा से)	
		विद्याकरसिंह (० सिद्ध)	संचयगाथासंचिका	बुद्धधीज्ञान	
		शाक्यसिंह	सुत्रालंकार	मैत्रेयनाथ	
		"	सुत्रालंकार-भाष्य	असंग	
		विद्याकरप्रभ	मध्यमकनयसारम्यमासप्रकरण	विद्याकरप्रभ	
		विशुद्धसिंह	अभिधर्मकोश-टीका (स्फुटाधी)	यदोमित्र	
		जिनमित्र	अभिधर्मकोश-भाष्य	वसुबंधु	
		दानशील	बुद्धाऽनुसृष्टि-टीका	वसुबंधु	
		प्रज्ञावर्म	हेतुविंदु	धर्मकीर्ति	
		ज्ञानगर्भ	मद्रचर्याप्रणिधान-टीका	अलंकारमद्र	
		सर्वज्ञदेव	रत्नलितप्रमर्दन	भार्यदेव	
		"	योधिचर्याचिंतार	शांतिदेव ।	
		धर्माकर	विनयप्रश्न-कारिका	करवागर्भमित्र	
		शीलेंद्रयोधि	महावैरोचनाऽभिज्ञाशोधि-सूत्र		
		प्रज्ञाकरवर्मा	हेतुविंदु-टीका	दिव्यदेव	
		विद्याप्रभाकर (?)			
		शुद्धसिद्ध	रत्नचंद्रपरिपृच्छा		
		द्वपल्-ग्यि-न्हुन्-पो	हुमकिनारपरिपृच्छा		
		वे-शेस्-मजिड-पो	रत्नजातिपरिपृच्छा		
		यस्सह-सक्थोळ	सूर्यसंन्यास-सूत्र		
		द्वपल्-द्वययह-म्*	भयसंन्यास		
		रिन्-छेन्-मूछोग्*			
(घोग्-र)	कलुडि-ग्येल्-मूछुन्	विशुद्धसिंह			
		ज्ञानगर्भ			
		प्रज्ञावर्म (० गर्भ)			

काल

अनुवादक सहायक, या राम-
सामयिक

अनुवादित ग्रंथ

ग्रंथकर्ता

सर्वज्ञदेव (६७५मीरी)

"

मन्त्र (७५
शिके)

जितमित्र (कृत सर्वांगि
वादी)

प्रातिमोक्ष-सूत्र-टीका

"

विनयविमंग-टीका

विबोद्धे

"

विनय-सूत्र-टीका

धर्मनि

(ईष्ट्स्) रेण्डरहित

दीपंकर-पुग (१८४२-१९०२)

१५८-१०५४ रिन्-छेन-
व्सड्-पो

सुभाषि

अष्टयाहामिका प्रज्ञापारि-
मिता

दीपंकरश्रीज्ञान

त्रिदारणमसतिफा

छंत्तरीर्षि

कमलगुप्त

विमलप्रदनीत्तररत्नमाला अमोघरं
(राजा)

धर्मश्रीभद्र

ध्यान-पङ्क-धर्म-अवस्थान-श्रुति दान-
शील

परमाकरश्रीज्ञान

अभिधानोत्तर-तंत्र

श्रद्धारत्नमार्ग

हृन्मवालप्रकरण

आर्यदेव

परमाकरवर्मा

परमार्थे योधि चित्तमावना अक्षरपत्र

शुभदांति

अभिसमयालंकारालोक

हरिमद्र

जनार्दन

अष्टांगहृदय-सहिता

नागार्जुन

संगाधर

सप्तगुणपरिवर्णन-कथा

चतुर्वेद

सुब्रभद्र

चतुर्विपर्ययकथा

मति-विष

बुद्धश्रीज्ञानि

अक्षययुर्वेद

(मन्वेद)

दुल-त्रिमस्-योन-तन्

सुमागधावदान

शास्त्रिणे

बलो-लदन्-शोम्-रव्

२८२-१०५४ दीपंकरश्रीज्ञान

रिन्-छेन-व्सड्-पो

त्रिदारणमसतिफा

छंत्तरीर्षि

द्वे-वर्षि-बलो-प्रोम्

योधिपथप्रदीप

दीपंकरश्रीज्ञान

शास्य-बलो-प्रोम्

समाधिसंवरपरिवर्त

काल	अनुवादक	सहायक, या सामयिक	अनुवादित ग्रंथ	ग्रंथकर्ता
		ऽग्रोम्-स्तोन्	विमलरश्मिचिनुद्धप्रभा- धारणी	
		(ग्यं) व्घोन्-मुस्-सेद्-नो	मध्यमकरक्षप्रदीप	भाव्य (भाव- विवेक)
		(नग्-द्यो) हुल्-स्तिग्स्- र्यल्-व	मध्यमक-हृदय	"
		"	मध्यमक वृत्ति	"
		ग्शोन्-नु-मद्योग् शेस्-रय्-प्रग्स् बुद्धशांति		
	डि-य्लो- मोस्	सुभूतिश्रीशांति करुणा (ज्ञान) श्रीभद्र श्री कुमार	योधिसत्त्वचर्चावितार- संस्कार	कल्याणदेव
		दीपकरधीज्ञान	अवलोकितेश्वर-परिपृच्छा- सप्तधर्मक	
१०२७	सोमनाथ	शेस्-रय्-प्रग्स्	कालचक्रतंत्र	
१००४	सृत्यु (ऽग्रोग्-भि) शाक्य-ये-शेस्	गयाधर	संपुटीतंत्र	
		अमोघवज्र प्रज्ञागुह्य		
	गयाधर	(ग्यि-जो) सु-यद्-ओद्-मेर् ल	बुद्धकपालयोगिनी-संघ ल	
		(ऽग्रोम्-सुग्-घ) व्ह-व्घस्	पद्मदाकतंत्र	
		(ऽग्रोग्-भि) शाक्य-ये-	हेवज्रतंत्रराज	
		शेस्		
	नि-व-ओद्	सुजनधीज्ञान मंत्रकृतय गुणाकरभद्र	परमादिमहायानकरुपराज	

काय अनुवादक साधारण, या स्व-
नामनिष्ठ अनुवादिन प्रिय संवत्

११०९ सुस्तु (संघ) एको-
स्तुत-सोम-गु
 भासरागोमी
 दीपंकरभीमान
 मनोरथ
 कुमारधीमत्त
 तिलकलदा
 सुमनिहीति
 अगुशदाय
 सातिमद्र
 महाजन (बदमोरी)
 यजन
 मंजुश्रीरमं
 अप्यराज
 परहितमद्र
 "

अभिनवमण्डलकाररूपा
 अभिनवमण्डलकारालोक
 अपोदगिदि
 मद्रथदांमणिपानभाषया
 धोपिचिपोत्पादयमा-
 शानविधि
 मियंरमम
 धर्मभंतात्रिभंगवृत्ति
 महागानोत्तरनंनयाख्या
 अमोपानागदपारमि-
 ताधारणी
 अपोदमत्रण
 न्यापविंदु
 प्रमाणविनिश्चय

प्रज्ञासमि
 हसिद्र
 संस्था
 (मकर)
 नागार्जुन
 जेगारि
 (भक्तारिभक्त)
 वसुधंजु
 भमंग
 धर्मंतर
 धर्मकीर्ति
 "

१०५५ जन्म (प-४५) नि-म-
 इगुम् पुण्यगंमय

सुदितश्री
 सूक्ष्मज्ञान
 तिलकलदा
 कनकदमं
 हसुमति
 अजितश्रीमद्र
 अपरिमितायुजांनद्वय-
 धारणी
 मुक्तिपट्टिकाकारिषा
 चतुःशतकसाध
 मध्यमकायतार-भाष्य
 अभिधर्मवोशटीका (लक्ष-
 णानुधारिणी)
 मूलमध्यमकवृत्ति (प्रस-
 क्षपदा)
 अष्टाक्षणकथा

नागार्जुन
 आयदेव
 चंद्रकीर्ति
 (पूर्णयर्जन)
 चंद्रकीर्ति
 अक्षरधोप

काल	अनुवादक	सहायक, या सम- सामयिक	अनुवादित ग्रंथ	ग्रंथकर्ता
	(अयो-सेइ-दकर्) शाक्य-डीइ	शांतिभद्र (नेपाली)	विज्ञप्तिमात्रतासिद्धि	रत्नाकरशांति
		कुमारकलश	मध्यमकालंकारवृत्ति	"
		चंद्रकुमार	महायानविशिका	नागार्जुन
		रुद्र	सुमापिनरत्नकरंड	(महाकवि) हर्ष
		अनंतश्री (नेपाली)	कार्यकारणभावसिद्धि	ज्ञानश्रीमिश्र
		छोस्-भिय-शेस्-रय् (मर्-प-) छोस्-भिय- द्वइ-पयुग्		

स-सुख-युग (११०२-१३७६)

११०१-१०	छुल्-तिमस्-ड्युइ-गनस्	अलंकदेव	विनयसुत्रन्याख्या	प्रज्ञाकर
	"	"	जातकमाला	हरिमद्र
११८२-	(यर्-छुइ-प) प्रगस्-	धर्मधर	प्रतिभामानलक्षण	आश्रेय
१२१०	प-न्यैल्-म्लन्			
		फीर्तिचंद्र	लोकानंदनाटक	चंद्रगोमी
		"	अमरकोप	अमरसिंह
		"	" टीका (कामधेनु)	सुभूतिचंद्र
११०३ जन्म	(लो-फु-) व्यम्स्-पडि-जगन्मित्रानंद	(मिश्र- द्वपल् योगी)	चतुरंगधर्मचर्या	जगन्मित्रानंद
		शाक्यश्रीभद्र	महायानोपदेशगाथा	शाक्यश्रीभद्र
११२२-	शाक्यश्रीभद्र	(लो-फु-) व्यम्स्-पडि- द्वपल्	सहांगधर्मचर्यास्तार	शाक्यश्रीभद्र
१२२५		द्वपल्		
		द्वम-य्चोम्	घोषिचिन्तावंतरग्रहण- विधि	अभयाकर
		कुन्-वृत्त-अर्ज्यल्-म्लन्	प्रमाणवार्तिक- कारिका	धर्मकीर्ति
	(गृह-स्तोत्र)	शै-ने- श्शकीकर	नागानंदनाटक	श्रीहर्षदेव
	म्यर्-मएन्		घोषिगन्वाचस्त्रान-	शै-ने- (मदा-

काल	अनुवादक	सहायक, या मूल-सामग्रिक	अनुवादित ग्रंथ	
		रुद्रमीकर	भरपलता	शक्ति
		"	धाम्यादर्श	दंडी
१२९०-१२९४	(कुम्भोत्र) रिन्-ऐन्-सुर		(बलाप) धातुकाय	दुर्गादि
		सुमनथ्री	स्वाद्यंतप्रक्रिया	हर्षकीर्ति
		"	नवदशोक्तो	केशव
१३०१-८०	धन्-धुन्-व-मा (ब्रह्मोत्तर-द्वेषोन्-पा)	सुमनथ्री (कश्मीरी)	उत्सवजटाऽनुसारतंत्र	कालिदास
			अभिधर्ममनुभवटीका	
१३८४-१४६८	बनरज	चौट्-र-प-पुग (१३५६-१६६४)		
		(ऽगोम्) विद्-यम्-ये-सोन्-नु-द्वेषेल् (जन्म १३५२)		
		(रात्ग्) दोस्-र-रिन्-ऐन् (जन्म १४०५)		
		दोस्-र-य-येल् (जन्म १४२३)		
	(वि-नु) घमं-पालभद्र जन्म १५२७		अभिधर्मकोशाटीका	स्विरमति
			कालचट्टागणित	
			ईश्वरकर्तृस्वनिराकृति	सागाहुँत
			मंशुधीशब्दलक्षण	मध्यकीर्ति
			" धृति	देव (कालिदास)
	(मर्वल्-यम्-ये-प) कृष्णभट्ट (कुरक्षेत्र)		सारस्वतव्याकरण	अनुभूतिस्वर-पाचार्य
	कुन्-दुगाऽ-सन्दि-पो (तारानाथ) जन्म १५७५			
		वर्तमान युग (१६६४-.....)		
१६६५	कुन्-दोम्-दुन्-सुर्	गोकुलनाथमिश्र (कुरक्षेत्र)	प्रक्रियाकोमुदी (१६५८)	रामचंद्र
		यलभद्र	सारस्वतव्याकरण (१६६५)	अनुभूति-स्वरूपाचार्य
		गीतमभारती	आयुर्वेदगारसमुच्चय (१६६७)	
		ओंकारभारती		
		उत्तमगिरि		

यह सूची पूर्ण नहीं है। इसमें बिक्रमकालीन अनुवादकों को दिखलाने का प्रयत्न किया गया है। तैरहरे दलाई लामा मुनि शायतसागर वा (अग्रहण की अभावस्था) को लामा से ... १८ दिवस १०

